लैंगिक संवेदनशीलता

(GENDER SENSITIZATION)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी-263139

नैनीताल, (उत्तराखण्ड़)

फोन न0- 05946- 261122, 061123

Toll free No. : 18001804025

Email: info@uou.ac.in Website: https://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रो. जे. पी. पचौरी,** (सदस्य) कुलपति, हिमालयन, विश्वविद्यालय, जीवनवाला, देहरादून
2. **प्रो. सी.सी. ठाकुर,** (सदस्य) (से.नि. प्राध्यापक, समाजशास्त्र) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश
3. **प्रो. रबीन्द्र कुमार,** (सदस्य) समाजशास्त्र विभाग, इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
4. **प्रो. रेनू प्रकाश,** (सदस्य) समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
5. **डॉ. भावना डोभाल,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
6. **डॉ. गोपाल सिंह गौनिया,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रेनू प्रकाश, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. भावना डोभाल, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**4, 3, 11**
डॉ. गोपाल सिंह गौनिया, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**5, 9**
श्रीमती शैलजा, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**10, 12**
डॉ. किशोर कुमार, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**6, 7**
प्रो. कमरूद्धीन आलम, प्राध्यापक समाजशास्त्र, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी	**2**
डॉ. अरूणिमा पाण्डे, हरि ओम सरस्वती पी.जी. कालेज धनौरी, हरिद्वार	**1, 8**
डॉ. योगेश मैनाली, सहायक प्राध्यापक, एस.एस.जे.विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा	**13, 14**

सम्पादक मंडल

इकाई संयोजन एवं आंतरिक विशेषज्ञ

प्रो. रेनू प्रकाश
समन्वयक
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. गोपाल सिंह गौनिया
असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

बाह्य विशेषज्ञ

प्रो. (डॉ.) कमरूद्धीन आलम
प्रचार्य, राजकीय महाविद्यालय, लमगड़ा अल्मोड़ा

आई.एस.बी.एन. : **प्रकाशन पूर्व प्रतियां**

कापीराइट: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

प्रकाशक: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

नोट: इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। **मुद्रित प्रतियॉ-**

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

षष्ठम सेमेस्टर (Sixth Semester) **BASO (N) 223**

4 CREDITS

लैंगिक संवेदनशीलता
(GENDER SENSITIZATION)

इकाई संख्या	अनुक्रमणिका	पृष्ठ संख्या
	खण्ड-1 **लैंगिक समझ** **Understanding Gender**	
इकाई-1	**लैंगिक पहचान: पुरुषत्व और स्त्रीत्व (**Gender Identity: Masculinity and Femininity	**1-16**
इकाई-2	**लैंगिक भूमिका (**Gender roles	**17-26**
	खण्ड-2 **लैंगिक सामाजिक निर्माण: लैंगिक बनाम जैवकीय** **Social Construction of Gender: Gender Vs Biological**	
इकाई-3	**परिवार (**Family)	**35-46**
इकाई-4	**विवाह (**Marriage)	**47-54**
इकाई-5	**शिक्षा (**Education)	**55-70**
इकाई-6	**धर्म (**Religion)	**71-83**
	खण्ड-3 **लैंगिक और कार्य** **Gender and Work**	
इकाई-7	**घरेलू कार्य (**Household Work)	**84-99**
इकाई-8	**अदृश्य कार्य (**Invisible Work)	**100-123**
इकाई-9	**महिलाएँ: संगठित और असंगठित क्षेत्र (**Women: Organized and Unorganized Sector)	**124-139**
इकाई-10	**लैंगिक श्रम विभाजन (**Gender Division of Labour**)**	**140-157**
	खण्ड– 4 **लैंगिक मुद्दे** **Gender Issues**	
इकाई-11	**स्वास्थ्य (**Health)	**158-176**
इकाई-12	**हिंसा (**Violence)	**177-193**
इकाई-13	**लिंगानुपात (**Sex ratio)	**194-207**
इकाई-14	**मीडिया (**Media)	**208-222**

इकाई- 01 लैंगिक पहचान: पुरुषत्व और स्त्रीत्व
Gender Identity: Masculinity and Femininity

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा

1.3 लैंगिक पहचान सम्बन्धी पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणाएं

- 1.3.1 लिंग बनाम जेंडर अथवा जैविकीय लिंग बनाम सामाजिक लिंग
- 1.3.2 लिंग अथवा जैविकीय लिंग क्या है
- 1.3.3 जेंडर या सामाजिक लिंग क्या है
- 1.3.4 पुरुषत्व की अवधारणा एवं निर्माण
- 1.3.5 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व सम्बन्धी परम्परागत अभिव्यक्तियाँ
- 1.3.6 स्त्रीत्व की अवधारणा एवं निर्माण

1.4 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व में सामाजिक संतुलन के उपाय

- 1.4.1 सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन
- 1.4.2 व्यक्तित्व का संतुलित विकास
- 1.4.3 आत्म-सम्मान के निर्माण के प्रति सजगता
- 1.4.4 शिक्षा एवं रोजगार के समान अवसर
- 1.4.5 उत्तम एवं सहयोगी पारिवारिक वातावरण का निर्माण
- 1.4.6 भिन्न लिंगों को संवाद एवं सम्मान हेतु मंच प्रदान करना

1.5 लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियाँ

- 1.5.1 पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिता
- 1.5.2 शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ापन
- 1.5.3 पितृसत्तात्मक मानदंड
- 1.5.4 लिंग असमानता
- 1.5.5 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अतिवादी अवधारणा
- 1.5.6 लैंगिक हिंसा
- 1.5.7 सकारात्मक विचारों का अभाव

1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 बोध प्रश्नों हेतु उत्तर संकेत
1.9 अभ्यास प्रश्न
1.10 सन्दर्भ सूची
1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री

1.0 प्रस्तावना (Introduction) :

लिंग एवं लैंगिक संवेदनशीलता किसी भी समाज, काल-क्रम और घटना-क्रम के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। लिंग की निर्मिती सामाजिक और जटिल होती है। समाज की संस्कृति, मानक, मूल्यों एवं आदर्शों के द्वारा लैंगिक विचारधारा प्रभावित होती है। भारतीय समाज में भी विश्व के अन्य समाजों की भाँति लिंग के दो प्रमुख पक्ष, पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व है। लिंग प्राणीशास्त्रीय अथवा जैविक विभाजन `सेक्स` से भिन्न है, जहाँ पर प्राणीशास्त्रीय और जैविक विभाजनों में दो विपरीत लिंगी नर अथवा मादा होते हैं। मानव समाज में नर और मादा क्रमशः पुरुष और स्त्री होते हैं, वहीं जैविक विशेषताओं के साथ जब समाज की संस्कृति के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है तो प्राणीशास्त्रीय और जैविक लिंग सामाजिक लिंग में बदल जाता है। यह सामाजिक लिंग अपने साथ अनेक सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों का गुण समाहित कर लेता है। इन सभी गुणों के साथ लिंग का विकास कुछ इस प्रकार हो जाता है कि जैविकीय विशेषताओं से अलग पुरुष को पुरुषत्व एवं स्त्री को स्त्रीत्ववादी विचारधारा से जोड़कर देखा जाने लगता है। इस विचारधारा में पुरुष कुछ या अधिक लाभप्रद स्थिति में है और महिला कम या अधिक हानिप्रद स्थिति में। अर्थात समाज में महिलाओं को केवल इसलिए कि वो महिला हैं, पुरुषों से कमतर आंका जाने लगता है।

स्त्रीवादी एवं पुरुषवादी विचारधारा का निर्माण पितृसत्तात्मक विचारों के प्रक्रिया के आधार पर होता है। उदाहरणस्वरुप जेंडर का निर्माण परिवार में किसी बालक या बालिका के जन्म के बाद ही होने लग जाता है। भारतीय समाज में भी नवजात शिशु के लिंग के आधार पर पारिवारिक उत्साह में अंतर आ जाता है। बालिका शिशु के लिए निर्धारित रंग गुलाबी है,तो बालक के लिए नीला, बालिका अपने शैशव अवस्था में नन्ही परी है, तो बालक बहादुर बच्चा,बालक शिशु यदि परिवार में रोना धोना मचा दी तो उसे अक्सर यह कहा जाता है कि क्या लड़कियों की तरह रो रहा है? यह सभी विचार बचपन से ही लैंगिक असमानता को पोषित करते हैं। और यहीं से जेंडर की निर्मिती भी मजबूत होने लगती है। इस अध्याय में लिंग, लैंगिक संवेदनशीलता, पुरुषत्व और स्त्रीत्व पहचान की अवधारणाओं को समझने का प्रयत्न किया गया है। जिसका विवरण इसी अध्याय में आगे किया जा रहा है।

1.1 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ❖ लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ❖ लैंगिक पहचान सम्बन्धी पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणा को जान सकेंगे।
- ❖ पुरुषत्व और स्त्रीत्व के सामाजिक संतुलन के उपायों के विषय में जान सकेंगे।
- ❖ लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियों के विषय में समझ सकेंगे।

1.2 लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा (Concept of Gender Sensitization)-

भारत में प्राचीन समाज से लेकर अद्यतन कुछ अपवादों को छोड़कर लिंग एवं लैंगिक संवेदनशीलता की समस्या पाई जाती रही है। लिंग अथवा जेंडर का निर्माण सामाजिक संरचना के अनुसार होता है, जो पुरुष एवं महिला की भूमिकाओं को समाज एवं संस्कृति द्वारा निर्धारित किए गए भूमिकाओं एवं परिस्थितियों द्वारा मूल्यांकित करने लगते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि जेंडर समाज के ऐसे मानदंडों, आदर्शों, एवं व्यवहारों का पुंज है, जिसे समाज किसी व्यक्ति की जैविककीय विशेषताओं जैसे उसकी स्त्री और पुरुष होने के साथ जोड़कर देखने लगता है। लिंग, लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणाएं परस्पर सम्बद्ध हैं।

लैंगिक संवेदनशीलता का तात्पर्य है कि विभिन्न समान एवं विपरीत लिंगों के प्रति सहयोग, सम्मान एवं निष्पक्षता का भाव बिना किसी पूर्वाग्रह तथा भेदभाव के रखना। लैंगिक संवेदनशीलता में बिना किसी व्यक्ति के साथ लैंगिक भेदभाव के उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का आवश्यकतानुसार बंटवारा करना, किसी व्यक्ति विशेष के लिंग के प्रति बिना पूर्वाग्रह एवं भेदभाव के समान व्यवहार करना, भाषा और शब्दों के प्रयोग के प्रति लैंगिक रूप से संवेदनशील रहना आदि जैसे विषय महत्त्वपूर्ण हैं।

लैंगिक संवेदनशीलता के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करके समाज महिलाओं और पुरुषों के साथ ही तीसरे लिंग के लोगों के लिए भी एक अनुकूल वातावरण का निर्माण कर सकता है। वर्तमान समय में सभी समाजों में लैंगिक संवेदनशीलता सामाजिक सुदृढ़ता एवं एकता के लिए एक आवश्यक शर्त है। सामाजिक-सांस्कृतिक, पारिवारिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में लैंगिक संवेदनशीलता का समान भाव समाज में सभी लिंगों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में सहायक होगा।

बोध प्रश्न 1 : लैंगिक संवेदनशीलता से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

1.3 लैंगिक पहचान सम्बन्धी पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणाएं (Concepts of Masculinity and Femininity Related to Gender Identity) :

पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अवधारणा का सम्बन्ध समाज के दो प्रमुख लैंगिक वर्गों स्त्री एवं पुरुष से है। प्रत्येक समाज में आंशिक भिन्नताओं के साथ पुरुषत्व और स्त्रीत्व अवधारणाएं विद्यमान हैं। इनको समझने के पूर्व यह आवश्यक है कि पुरुषत्व और स्त्रीत्व से जुड़ी हुई कुछ अन्य अवधारणाओं को संक्षेप में समझ लिया जाये।

1.3.1 लिंग बनाम जेंडर अथवा जैविकीय लिंग बनाम सामाजिक लिंग (Sex Vs Gender or Biological Sex vs Social Gender) :

लिंग बनाम जेंडर अथवा जैविकीय लिंग और सामाजिक लिंग को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1.3.2 लिंग अथवा जैविकीय लिंग क्या है (What is Sex or Biological Sex)?

स्त्री एवं पुरुष को जैविकीय विशेषताओं के आधार पर एक दूसरे से भिन्न किया जा सकता है। स्त्री और पुरुषों का वक्षस्थल, लम्बाई-चौड़ाई, आकार-प्रकार, कुछ विशिष्ट ग्रंथियां, शरीर के बालों की विशेषताएं आदि एक दूसरे से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, जैविकीय लिंग को जीवों के शारीरिक गठन, अनुवांशिकी, अन्तःस्रावी ग्रंथियों (हार्मोन्स) एवं जननांगों के आधार पर नर या मादा के वर्गीकरण के रूप में एक जैविक और शारीरिक संरचना के रूप में जाना जा सकता है। जब स्त्री और पुरुषों की विशेषताओं को जैविकीय आधार पर समझने का प्रयत्न किया जाता है, तब स्त्री और पुरूष को उनकी विशेषताओं के आधार पर केवल भिन्न करते हैं न कि असमान। यह स्थिति जैविकीय लिंग को दर्शाती है। अर्थात् सेक्स या जैविकीय लिंग ऐसी अवधारणा को संदर्भित करता है, जिसका सम्बन्ध स्त्री या पुरुष के जैविकीय विशेषताओं अथवा गुणों से होता है। पहली पीढ़ी के नारीवादी समाजशास्त्रियों में एन्ना ओकले ने बलपूर्वक मत दिया कि यौन अथवा सेक्स अथवा जैविकीय लिंग स्थिर और अपरिवर्तनशील अवधारणा है, जबकि जेंडर या सामाजिक लिंग विभिन्न समाजों में परिवर्तनशील होता है। जैविकीय लिंग का सम्बन्ध प्रत्यक्ष तौर पर विशुद्ध विज्ञानों की श्रेणी में आने वाले जीवविज्ञान से है। सेक्स या जैविकीय लिंग की स्थिति महिला और पुरुष के बीच भिन्नता को दर्शाती है।

विभिन्न विचारकों के अनुसार लिंग अथवा जैविकीय लिंग का तात्पर्य :

कई विचारकों ने लिंग अथवा जैविकीय लिंग को अपने अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

- अन्ना ओकले आपने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सेक्स जेंडर एंड सोसाइटी (1972) में सेक्स को परिभाषित करते हुए कहा है कि "सेक्स का तात्पर्य पुरुषों अथवा स्त्रियों के जैविक विभाजन से है।"
- रोबर्ट जे. स्टोलर ने अपनी पुस्तक सेक्स एंड जेंडर में बताया है कि, 'सेक्स का तात्पर्य स्त्री या पुरुष के सेक्स से है। जैविक अंग यह निर्धारित करता है कि कोई स्त्री है या पुरुष। यौनिकता शब्द का आशय शरीर रचना एवं शरीर विज्ञान से है।'
- डब्लूएचओ द्वारा यौनिकता की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि 'यौनिकता मनुष्य होने का एक केंद्रीय पहलू है। सेक्स, जेंडर, पहचान एवं भूमिकाएं, यौन अभिवृत्तियां, कामुकता, आनंद, अंतरंगता, और प्रजनन ये सभी यौनिकता के तहत आते हैं।'

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सेक्स अथवा लिंग अथवा जैविकीय लिंग का सम्बन्ध प्रत्यक्ष तौर पर महिला (मादा) या पुरुष (नर) के शारीरिक बनावट, अनुवांशिक विशेषताओं अर्थात् प्राकृतिक रूप से प्रदत्त विभेद से है। स्त्री और पुरुष की विभिन्नता से है, न कि असमानता से। मानव को प्रकृति द्वारा प्रदत्त सेक्स या जैविकीय विशेषताएं स्थिर और अपरिवर्तनशील होती हैं।

बोध प्रश्न 2 : लिंग अथवा जैविकीय लिंग क्या है?

.....

.....

जैविकीय लिंग और सामाजिक लिंग को हम निम्नलिखित सूत्र द्वारा समझ सकते हैं-

स्त्री अथवा पुरुष + जैविकीय विशेषताएं = जैविकीय लिंग या सेक्स

स्त्री अथवा पुरुष + जैविकीय विशेषताएं + सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यांकन = जेंडर या सामाजिक लिंग

1.3.3 जेंडर या सामाजिक लिंग क्या है (What is Gender or Social Gender)?

जेंडर शब्द की उत्पत्ति और उसका प्रयोग भिन्न भिन्न अनुशासनों में भिन्न भिन्न अर्थों एवं प्रकारों से किया जाता रहा है। भाषाविज्ञान, इतिहास, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, नृविज्ञान, जीवविज्ञान, समाजशास्त्र एवं नारीवादी

लेखन में जेंडर की का विविध परिप्रेक्ष्यों में विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। जेंडर या सामाजिक लिंग का सामाजिक परिप्रेक्ष्य यदि देखा जाये तो सबसे अधिक समाजशास्त्र से सम्बद्ध अवधारणा है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति और अस्तित्व का मुख्य आधार समाज, संस्कृति और सामाजिक संरचना है। सेक्स से अलग होकर जेंडर की सामाजिक सन्दर्भ में व्याख्या का कार्य प्रारंभिक तौर पर मार्गरिट फुलर (वीमेन इन दी नाइनटीन्थ सेंचुरी 1851), हैरियट टेलर मिल (इनफ्रेन्चिसमेंट ऑफ़ वीमेन 1865) जॉन स्टुअर्ट मिल (सब्जेक्शन ऑफ़ वीमेन 1884) एवं जोर्ज स्टुअर्ट मिल (ओरिजिन ऑफ़ स्टेट, फैमिली एंड प्राइवेट प्रॉपर्टी 1884) आदि ने किया और बताया कि समाज में जेंडर का विभाजन जैविक आधार पर तय नहीं होता बल्कि जेंडर का निर्धारण समाज द्वारा निर्धारित मानदंडों और आदर्शों द्वारा होता है। इन आदर्शों में महिला शोषित के रूप में होती है और पुरुष शोषक के रूप में। यही कारण है कि जेंडर को सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से समझा जा सकता है, जेंडर ना केवल स्त्री और पुरुष को एक दूसरे से भिन्न बनाता है, बल्कि स्त्री और पुरुष को कई मामलों में असमान बनाता है। जेंडर अथवा सामाजिक लिंग की अवधारणा ऐसी स्थिति को दर्शाती है, जहाँ स्त्री और पुरुषों के प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं का मूल्यांकन सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। जेंडर को समझने के लिए पितृसत्ता और इसके सम्बन्ध तथा पितृसत्ता के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विकास क्रम को भी समान रूप से समझना आवश्यक है। एक स्त्री के लिये कुछ जमी जमाई भूमिकाओं को सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में उचित समझा जाता है, और पुरुषों के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार की भूमिकाओं को आरक्षित कर दिया जाता है। यौन और लिंग के बीच भिन्नता करने वाली पहली पीढ़ी की नारीवादी लेखिका एवं फ्रेंच समाजशास्त्री सिमोन डी व्यूवोइर ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'दी सेकंड सेक्स (1949)' में अनेक विश्लेषण एवं तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया कि कोई भी औरत, औरत बनकर पैदा नहीं होती बल्कि समाज द्वारा बनाई जाती है। जेंडर अथवा सामाजिक लिंग का निर्माण सामाजिक सांस्कृतिक रूप से होता है। स्त्री या पुरुष की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करने में सामाजिक संरचना का विशेष योगदान होता है।

विभिन्न विचारकों के अनुसार सामाजिक लिंग का तात्पर्य :

भारत समेत विश्व के अलग-अलग देशों में नारीवादी समाजशास्त्रियों एवं लिंग विषयक विचारकों ने लिंग आधारित विषयों का अध्ययन करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिंदी व्याकरण के अनुसार संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु या जीव के पुरुष या स्त्री जाति के होने का बोध हो उसे लिंग कहा जाता है। सामान्यतया लिंग का तात्पर्य है- पहचान, प्रतीक अथवा बोध। जैसे पुलिंग का अर्थ है पुरुष का प्रतीक, स्त्रीलिंग का तात्पर्य स्त्री का प्रतीक एवं शिवलिंग का तात्पर्य महादेव शिव का प्रतीक है।

- विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने लिंग के विषय में कहा कि 'लिंग जैविक लैंगिक विशेषताओं को दर्शाता है जो मनुष्यों को पुरुष या स्त्री के रूप में परिभाषित करता है।' ये विशेषताएं मनुष्यों को पुरुष और स्त्री के रूप में विभाजित करने का कार्य करती हैं।
- कमला भसीन ने जेंडर के विषय में कहा है कि, "जेंडर सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से स्त्री पुरुषों को दी गई परिभाषा है, जिनके माध्यम से समाज उन्हें स्त्री और पुरुष दोनों की सामाजिक भूमिकाओं में विभाजित करता है यह समाज की सच्चाई को मापने का एक विश्लेषणात्मक उपकरण है।"
- इसी प्रकार एन्ना ओकले ने जेंडर को स्पष्ट करते हुए यह बताया कि, "जेंडर शब्द का सम्बन्ध संस्कृति से है, इसका तात्पर्य पुरुषों व महिलाओं का पुरुषोचित या स्त्रियोचित वर्गों में सामाजिक विभाजन है।"

उपरोक्त विवेचन और परिभाषाओं के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि सेक्स या जैविककीय लिंग विशुद्ध रूप से जीवविज्ञान की अध्ययन सामग्री है, जिसमें नर और मादा अर्थात् मानव जगत में स्त्री और पुरूष के जैविकीय विशेषताओं और लक्षणों के आधार पर उन्हें एक दूसरे से भिन्न समझा जाता है। जबकि जेंडर या सामाजिक लिंग एक विशुद्ध समाजशास्त्रीय अवधारणा है, जिसका निर्माण सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में होता है आदर्शों, मूल्यों, एवं प्रतिमानों के आधार पर होता है। जेंडर या सामाजिक लिंग की अवधारणा परिवर्तनशील है। अर्थात् इसमें समय, विचारधारा और चिंतन के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है, किंतु सेक्स या जैविकीय लिंग सामान्य तौर पर अपरिवर्तनशील अवधारणा है क्योंकि यह प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है।

बोध प्रश्न 3 : जेंडर अथवा सामाजिक लिंग को परिभाषित कीजिये।

.....

.....

.....

1.3.4 पुरुषत्व की अवधारणा एवं निर्माण (The Concept and Construction of Masculinity)-

पुरुषत्व शब्द अंग्रेजी के Masculinity (मस्कुलिनिटी) शब्द का हिंदी रूपांतरण है। Masculinity शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्दों Masculinus और masculus शब्द से मानी जाती है जिसका तात्पर्य क्रमशः पुरुष व्यक्ति और पुरुष होता है। Masculinity शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 14वीं शताब्दी में पुरुष लिंग (सेक्स) के अर्थ में किया गया था। एक अन्य अर्थ में पुरुषत्व शब्द को पौरुष से उत्पन्न माना जा सकता है, जिसका तात्पर्य है पारंपरिक रूप से पुरुषों से संबंधित गुण एवं दिखावट। पुरुषत्व की अवधारणा की निर्मिती सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर होती है। पुरुषत्व का संबंध ऐसे विशिष्टताओं और गुणों से है, जिनका निर्माण एवं विकास

सामाजिक सांस्कृतिक रूप से होता है। नारीवादी कार्यकर्ता मारिया मीस कहती हैं कि, पुरुषत्व और नारीत्व की अवधारणाएं जैविकीय विकास का नहीं वरन एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम हैं। यह समाज तय करता है कि किसी पुरुष के लिए किस तरह के दिनचर्या, जीवन शैली, पहनाव, कार्य, एवं व्यवहार होना चाहिए। पुरुषत्व की अवधारणा में देशकाल, समय, परिस्थिति एवं समाज के अनुसार भिन्नता पाई जा सकती है। क्योंकि प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग होती है इसीलिए प्रत्येक समाज की सामाजिक सांस्कृतिक अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न हो जाती है। ऐसे में भारत में पुरुषत्व की अवधारणा के मायने कई अर्थों में अन्य देश पुरुषत्व की अवधारणा से भिन्न हो सकते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से निर्मित, पुरुषत्व की अवधारणा परिवर्तनशील अवधारणा है। पुरुषत्व का निर्माण कभी भी स्थायी रूप में नहीं हो सकता। इसकी पहचान स्थानीय एवं सामाजिक सांस्कृतिक होती है।

समतावादी अथवा मातृसत्तात्मक समाजों की तुलना में पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिक असमानता अधिक पाई जाती है। अधिकांश पितृसत्ता वाले समाजों में पुरुष वर्ग की प्रस्थिति सापेक्षिक रूप से अधिक लाभकारी स्थिति में रही है। ऐसे समाज में पुरुषत्व से जुड़े हुए कार्यों को सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उत्तम समझा जाता है। ऐसे समाजों का पुरुष वर्ग शक्तिशाली वर्ग है, वहाँ समाज के तौर तरीकों का झुकाव पुरुष वर्ग की तरफ अधिक होता है।

बोध प्रश्न 4 : पुरुषत्व की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

1.3.5 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व सम्बन्धी परम्परागत अभिव्यक्तियाँ –

प्रत्येक समाज में पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अवधारणा में वहां के सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के अनुसार भिन्नता पाई जाती है किन्तु सभी पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व सम्बन्धी कुछ सामान्य अभिव्यक्तियाँ समान रूप में पाई जाती रही हैं। इनमें से कुछ अभिव्यक्तियों को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है, जो कि पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणाओं को समझने में और अधिक सहायक होंगी-

क्रम संख्या	पुरुषत्व से सम्बंधित अभिव्यक्तियाँ	स्त्रीत्व से सम्बंधित अभिव्यक्तियाँ	अभिव्यक्तियों का स्वरुप
1.	कार्यक्षेत्र घर के बाहर	कार्यक्षेत्र घर के भीतर	आर्थिक पक्ष सम्बन्धी
2.	प्रभुत्वशाली एवं आक्रामक स्वभाव	विनम्र एवं शान्त स्वभाव	व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी
3.	सार्वजनिक स्थान हेतु उपयुक्त	घर के अंदर के लिए सुलभ	सामाजिकता सम्बन्धी
4.	कठोर स्वभाव	कोमल स्वाभाव	व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी
5.	शारीरिक रूप से बलिष्ठ एवं कठोर	शारीरिक तौर पर सापेक्षिक रूप से कमजोर और कोमल	शारीरिक गठन सम्बन्धी
6.	मानसिक रूप से स्वतंत्र एवं तर्कशीलता का गुण	मानसिक तौर पर अभिभावकों की अधीनता एवं आज्ञाकारिता का गुण	बौद्धिकता सम्बन्धी
7.	सापेक्षिक रूप से कम भावुक एवं तटस्थ	भावना एवं प्रेम की अधिकता	भाव सम्बन्धी

बोध प्रश्न 5 : पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व से सम्बन्धी किन्ही चार अभियाक्तियों को बताइये।

.....

.....

.....

1.3.6 स्त्रीत्व की अवधारणा एवं निर्माण (The Concept and Construction of Feminity) :

जिस प्रकार पुरुषत्व की अवधारणा का सम्बन्ध समाज में पुरुष वर्ग से है उसी प्रकार स्त्रीत्व की अवधारणा का सम्बन्ध समाज में स्त्री वर्ग से पाया जाता है। यथार्थ में इन दोनों अवधारणाओं को सापेक्षिक रूप में समझना कुछ सहज होगा। यह दोनों ही अवधारणाएं एक दूसरे से विपरीत अवधारणाएं हैं। जिस तरह पुरुषत्व की अवधारणा का निर्माण एवं विकास सामाजिक सांस्कृतिक रूप से होता है, ठीक उसी प्रकार स्त्रीत्व की अवधारणा का निर्माण एवं विकास भी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक रूप से होता है। स्त्रीत्व की अवधारणा स्थिर नहीं है बल्कि परिवर्तनशील और समय तथा सामाजिक संरचना विशेष से प्रभावित होती है। स्त्रीत्व के गुणों और विशेषताओं में सुंदरता, कोमलता, संवेदनशीलता, दया, सहानुभूत, धीरे हंसना, धीरे चलना आदि को सामाजिक सांस्कृतिक तौर पर उचित समझा जाता है। स्त्रीत्व की अवधारणा का पालन पोषण और विकास यद्यपि सामाजिक तौर पर होता है, किंतु इसका प्रारंभ बालक और बालिका के अपने परिवार से ही हो जाता है। बालक को अपने परिवार से ही यह

जानकारी प्राप्त होती है कि महिलाओं को कैसे रहना है? दूसरों से कैसे बातचीत करनी है? किसी विषय पर कितनी और किस प्रकार अभिव्यक्ति करनी है? और दूसरों से कैसा व्यवहार करना है? अर्थशास्त्रियों के लिए जीवन शैली और रहन सहन के सामाजिक आदर्श पुरुषों से भिन्न और लगभग विपरीत होते हैं। स्त्रीत्व की सामाजिक निर्मिती के लिए समाज उत्तरदायी है। चूँकि प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र की संस्कृति भिन्न-भिन्न होती है, इसीलिए प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र की स्त्रीत्व की अवधारणा में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है।

बोध प्रश्न 6 : स्त्रीत्व की अवधारणा को संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

1.4 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व में सामाजिक संतुलन के उपाय (Measures for Social Balance Between Masculinity and femininity) :

समाज में सुदृढ़ता, एकता और स्थायित्व लाने के लिये पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणा में संतुलन स्थापित रहना आवश्यक है। पुरुषत्व और स्त्रीत्व में सामाजिक संतुलन के कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित रूप में दिए जा रहे हैं-

1.4.1 सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन (Elimination of Social Stereotypes) :

पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अतिवादी अवधारणा का एक मुख्य कारण सामाजिक रूढ़ियाँ हैं। सामाजिक रूढ़ियों के कारण मनुष्य आधुनिकता और परिवर्तन को सहजता से ग्रहण नहीं कर पाता। ऐसे में यदि व्यक्ति के भावों में लैंगिक संवेदनशीलता के विपरीत रूढ़िगत विचार हैं, तो वह लैंगिक संवेदनशीलता और लैंगिक समानता के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर पाता। सामाजिक रूढ़ियों के उन्मूलन से पुरुषत्व और स्त्रीत्व में संतुलन आ सकता है और समाज में लैंगिक असमानता को समाप्त करने में भी सहायता मिल सकती है।

1.4.2 व्यक्तित्व का संतुलित विकास (Balanced Development of Personality) :

पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणा के लिए प्राथमिक रूप से परिवार का पालन-पोषण और सामाजीकरण उत्तरदायी होता है। यदि परिवार में बालक और बालिका को समान शिक्षा देकर उनके व्यक्तित्व का संतुलित विकास किया जाए और बालक एवं बालिका स्त्री एवं पुरुष दोनों में लैंगिक संवेदनशीलता के गुण समान रूप से समाहित किये जाएँ, तो पुरुषत्व और स्त्रीत्व से होने वाली सामाजिक असमानता और हानियों को कम किया जा सकता है।

1.4.3 आत्म-सम्मान के निर्माण के प्रति सजगता (Awareness About Building Self-Esteem) :

बालिकाओं और महिलाओं में आत्मसम्मान के लिए सजगता को जगाकर उनके आत्मविश्वास वृद्धि करके उनको एक सामान्य मानव बनने में सहायता प्रदान की जा सकती है। महिलाओं में जब आत्मसम्मान का भाव सुदृढ़ होगा तब वे अपने स्त्रीत्व की प्रस्थिति एवं भूमिकाओं के नकारात्मक पक्ष से बच पाएंगी, इसके साथ ही पुरुषत्व उन पर हावी नहीं हो सकेगा। आत्मसम्मान के निर्माण के प्रति सजगता का भाव घर, समाज, स्कूल और कॉलेज की शिक्षा तथा कार्यशाला के द्वारा लाया जा सकता है।

1.4.4 शिक्षा एवं रोजगार के समान अवसर (Equal Opportunities for Education and Employment) :

यह प्रत्येक परिवार का कर्तव्य होना चाहिए कि बालक एवं बालिका दोनों को शिक्षा एवं रोजगार के समान अवसर मिल सके। शिक्षा में रोजगार के समान अवसरों के द्वारा बालक एवं बालिका दोनों का व्यक्तित्व विकास एवं निर्माण समान रूप से हो सकेगा, इससे बालिका, बालक, परिवार एवं समाज सभी अतिवादी पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणा से बच सकेंगे।

1.4.5 उत्तम एवं सहयोगी पारिवारिक वातावरण का निर्माण (Creating a Positive and Supportive Family Environment) :

उत्तम एवं सहयोगी वातावरण का निर्माण करके पुरुषत्व और स्त्रीत्व के हानिकारक प्रभावों से बचा जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं एवं पुरुषों में समान रूप से एक दूसरे के लिए सहयोग एवं पारस्परिकता की भावना का विकास हो। उत्तम पारिवारिक वातावरण से लिंग संवेदनशीलता को बढ़ावा दिया जा सकता है।

1.4.6 भिन्न लिंगों को संवाद एवं सम्मान हेतु मंच प्रदान करना (Providing a Platform for Dialogue and Respect for Different Genders) :

कई बार संवादों और कुशल वार्तालाप के अभाव में लैंगिक सामाजिक समस्याओं का जन्म हो जाता है, इनमें से पुरुषत्व और स्त्रीत्व से संबंधित समस्याएं भी प्रमुख हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न लिंगों को उचित वार्तालाप और संवाद हेतु सार्वजानिक जीवन में मंच प्रदान किया जाये। इनसे उनमें एक दूसरे के प्रति सम्मान एवं सहयोग की भावना का विकास होगा परिणामस्वरूप वह लिंग सम्बन्धी रूढ़िवादी विचारधाराओं के अतिवाद से बचेंगे।

बोध प्रश्न 7 : पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अवधारणा में सामाजिक संतुलन के कोई दो उपाय बताएं।

.....

.....

.....

1.5 लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियाँ (Challenges of Gender Senstivity) :

लैंगिक संवेदनशीलता वर्तमान समय के महत्वपूर्ण मांगों में से एक है। प्रत्येक समाज लैंगिक संवेदनशीलता के लिए अपने अपने स्तर से प्रयास करता है। इन प्रयास में अनेक बाधाएँ और चुनौतियाँ सामने आती हैं। लैंगिक संवेदनशीलता के मार्ग में आने वाली चुनौतियों में कुछ प्रमुख चुनौतियों निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1.5.1 पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिता (Prejudice and Stereotyping) :

लैंगिक संवेदनशीलता की प्रमुख चुनौतियों में पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिता को समझा जा सकता है। लोगों के मस्तिष्क में पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिता के कारण लैंगिक संवेदनशीलता के लिए सकारात्मक विचार नहीं आ पाते हैं। रूढ़िवादी और पूर्वाग्रह से ग्रसित लोग नवीन अवधारणाओं को सहजता से ग्रहण नहीं कर पाते। इसलिए कई बार ऐसा पाया गया है कि पूर्वाग्रह और रूढ़िवादिता लैंगिक संवेदनशीलता के लिए बड़ी चुनौती के रूप में सामने आया है।

1.5.2 शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ापन (Educational and Economic Backwardness):

शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ापन के कारण महिलाओं को विकास के समान अवसर नहीं प्राप्त हो पाते। उचित शिक्षा एवं उचित आर्थिक स्वावलंबन के अभाव में लैंगिक संवेदनशीलता का सामाजिक भाव कमजोर रह जाता है।

1.5.3 पितृसत्तात्मक मानदंड (Patriarchal Norms) :

पितृसत्तात्मक मानदंडों की अतिवादिता से महिलाओं के लिए लैंगिक असमानता का अभाव पनपता है। पितृसत्तात्मक मानदंड महिलाओं की गतिशीलता एवं उनके विकास में बाधक बन कर संसाधनों तक उनकी पहुँच और उनके निर्णय लेने की क्षमता को सीमित करते हैं। इस प्रकार पितृसत्तात्मक मानदंड लैंगिक संवेदनशीलता के मार्ग में भी बाधा बनते हैं।

1.5.4 लिंग असमानता (Gender Inequality) :

लैंगिक असमानता को लिंग संवेदीकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा कही जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। परिवार में पाई जाने वाली लैंगिक रूढ़िवादिता बालक और बालिका के असमान सामाजीकरण का मुख्य कारण है। लैंगिक रूढ़िवादिता, लैंगिक असमानता को जन्म देती है और लैंगिक असमानता लिंग संवेदीकरण के मार्ग में बाधक बनता है।

1.5.5 पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अतिवादी अवधारणा (Redical Conceptions of Masculinity and femininity) :

पुरुषत्व और स्त्रीत्व के गुण लैंगिक असमानता के मार्ग में बाधक बन जाते हैं, जब इसका स्वरूप अतिवादी हो जाता है। पुरुषत्व और स्त्रीत्व का अतिवादी भाव महिलाओं और पुरुषों को कुछ विशिष्ट मानकों के अंतर्गत मूल्यांकित करने लगता है, जिससे लैंगिक संवेदनशीलता को चुनौती मिलने लगती है।

1.5.6 लैंगिक हिंसा (Gender Violence) :

लैंगिक हिंसा लिंग संवेदनशीलता के मामले बड़ी बाधा है। लैंगिक हिंसा के कारण महिलाओं में भय एवं निराशा का वातावरण व्याप्त रहता है। उनके पारिवारिक और सार्वजनिक क्षेत्र में जीवन के अवसर सीमित हो जाते हैं। ऐसा पाया गया है कि लैंगिक हिंसा का शिकार होते होते महिलाएं हिंसा को अपने भाग्य से भी जोड़ लेती हैं, ऐसे में वह यह धारणा बना लेती हैं कि उनके साथ जो हिंसा हो रही है वो उनके भाग्य में ही लिखा है। ऐसे में महिलाएं स्वयं भी और समाज का अन्य वर्ग भी उनके प्रति अधिक संवेदनशीलता का भाव नहीं रख पाता।

1.5.7 सकारात्मक विचारों का अभाव (Lack of Positive Thaughts) :

जब सामाजिक वातावरण लैंगिक संवेदनशीलता के अनुरूप न हो और सामाजिक रूप से लैंगिक संवेदनशीलता के लिए सकारात्मक विचारों का अभाव हो, तब लैंगिक संवेदनशीलता का अपेक्षित वातावरण समाज में नहीं बन पाता। इसीलिए लैंगिक संवेदनशीलता के मार्ग में सकारात्मक विचारों का अभाव एक बड़ी बाधा है।

बोध प्रश्न 8 : लैंगिक संवेदनशीलता की किन्ही दो चुनौतियों को समझाइये।

.....

.....

.....

1.6 सारांश (Conclusion) :

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत इकाई लिंग संवेदनशीलता एवं लैंगिक पहचान के पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व के विभिन्न पक्षों से जुड़ी है। इस इकाई में लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लैंगिक पहचान संबंधी स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की अवधारणा एवं इससे संबंधित विविध पक्षों का विवेचन किया गया है। सेक्स एवं लिंग को जैविकी एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया गया है। पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अवधारणा का अतिवादी स्वरूप किसी भी समाज की व्यवस्था और संतुलन में बाधाकारक होता है। इस इकाई में उन उपायों का विवेचन किया गया है जिनसे पुरुषा तो और स्त्रीत्व में संतुलन को बढ़ाया जा सके और उसे बनाए रखा जा सके। लैंगिक संवेदनशीलता के निर्माण में कोई भी समाज कौन कौन सी मुख्य चुनौतियों का सामना करता है? इसका संक्षेप में विवरण इस इकाई में दिया गया है। इस प्रकार यह इकाई लैंगिक पहचान संबंधी पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की अवधारणा के विविध पक्षों से संबंधित है।

1.7 शब्दावली (Glossary):

- **लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity)**- लैंगिक संवेदनशीलता का तात्पर्य विभिन्न समान एवं विपरीत लिंगों के प्रति सहयोग, सम्मान एवं निष्पक्षता का भाव बिना किसी पूर्वाग्रह तथा भेदभाव के रखना। लैंगिक संवेदनशीलता को लिंग के आधार पर सामाजिक भेदभाव समाप्त कर लैंगिक समानता को बढ़ावा देने की एक प्रकिया के रूप में जाना जा सकता है।
- **जैविकीय लिंग (Biological Sex)-** सेक्स अथवा लिंग अथवा जैविकीय लिंग का सम्बन्ध प्रत्यक्ष तौर पर महिला (मादा) या पुरुष (नर) के शारीरिक बनावट, अनुवांशिक विशेषताओं अर्थात् प्राकृतिक रूप से प्रदत्त विभेद से है। स्त्री और पुरुष की विभिन्नता से है, न कि असमानता से। मानव को प्रकृति द्वारा प्रदत्त सेक्स या जैविकीय विशेषताएं स्थिर और अपरिवर्तनशील होती हैं।
- **सामाजिक लिंग (Gender)-** जेंडर या सामाजिक लिंग एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है, जिसका निर्माण सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, आदर्शों, मूल्यों, एवं प्रतिमानों के आधार पर होता है। जेंडर या सामाजिक लिंग की अवधारणा परिवर्तनशील है। अर्थात् इसमें समय, विचारधारा और चिंतन के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।
- **स्त्रीत्व (Femininity)-** परम्परागत रूप में स्त्रीत्व को ऐसे भूमिकाओं के समुच्चय के रूप में के रूप में समझा जा सकता है जिसे समाज किसी महिला के महिला होने के नाते निभाने की अपेक्षा करता है। स्त्रीत्व का निर्माण भी सामाजिक सांस्कृतिक रूप से होता है। स्त्रीत्व के लक्षणों में कोमलता, दयालुता,

सुन्दरता, लचीलापन,सहानुभूति आदि जैसे गुण शामिल हैं। स्त्रीत्व की अवधारणा परिवर्तनशील अवधारणा है।

❖ **पुरुषत्व (Masculinity)-** पुरुषत्व का निर्माण सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से ऐसे व्यवहारों के पुंज से होता है, जो विभिन्न समाजों में आमतौर पर पुरुषों के लिए उचित समझे जाते हैं और जिसे समाज पुरुष अथवा बालक के शरीर के साथ जोड़कर देखता है। जैसे- साहस, दृढ़ता, कठोरता, आक्रामकता, नेतृत्व, निर्णयन और आत्मनिर्भरता आदि। पुरुषत्व की अवधारणा परिवर्तनशील है।

1.8 बोध प्रश्नों हेतु उत्तर-संकेत (Answer Hints for Comprehension Questions)-

☞ बोध प्रश्न 1- देखें -1.2 को।

☞ बोध प्रश्न 2- देखें – 1.3.2 को।

☞ बोध प्रश्न 3- देखें – 1.3.3 को।

☞ बोध प्रश्न 4- देखें – 1.3.4 को।

☞ बोध प्रश्न 5- देखें – 1.3.5 को।

☞ बोध प्रश्न 6- देखें – 1.3.6 को।

☞ बोध प्रश्न 7- देखें – 1.4.1 से 1.4.6 को।

☞ बोध प्रश्न 8- देखें – 1.5.1 से 1.5.7 को।

1.9 निबंधात्मक प्रश्न अभ्यास (Practice Questions)-

➢ लैंगिक संवेदनशीलता से आप क्या समझते हैं? लिंग बनाम जेंडर को विस्तारपूर्वक समझाइये।

➢ पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व का निर्माण कैसे होता है? पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व में सामाजिक संतुलन के उपाय बताइए।

➢ लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा को समझाते हुए लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियों का विवेचन कीजिये।

1.10 सन्दर्भ सूची (References)-

➢ मांगलिक, रोहित (2024)-जेंडर संवेदीकरण-संस्कृति, समाज एवं परिवर्तन, (ई-बुक) एडूगोरिल्ला पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या- 09 से 40,

- मुखर्जी, रवींद्रनाथ एवं अग्रवाल, डॉ. भरत (2021)-लिंग एवं लैंगिकता, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा,
- व्होरा, आशा रानी (1986)– भारतीय नारी अस्मिता एवं अधिकार, प्रथम संस्करण, 1986, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली,
- रस्तोगी, आर. के- लिंग एवं समाज, संजीव प्रकाशन मेरठ

1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री (Helpful Readings)-

1. सिंह, डॉ. अमिता (2015), लिंग एवं समाज, प्रथम संस्करण, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली-7,
2. मांगलिक, रोहित (2024)- जेंडर संवेदीकरण- संस्कृति, समाज एवं परिवर्तन, (ई-बुक) एडूगोरिल्ला पब्लिकेशन,

इकाई-03 **परिवार**

Family

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 परिवार

3.4 परिवार के माध्यम से लिंग की भूमिका

3.5 लैंगिकता हेतु समाजीकरण में परिवार की भूमिका

3.6 सारांश

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है जो अत्याधिक महत्वपूर्ण है। हम सब किसी न किसी परिवार के सदस्य है। परिवार हमें सुरक्षा, लालन-पालन, समाज से जुड़ने और शिक्षा प्राप्त करने में सहयोग देता है। परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, भौतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी पूरा सहयोग देता है। परिवार ने मानव को सांस्कृतिक विरासत व समृद्धि प्रदान की है। विवाहोपरान्त स्त्री व पुरूष और उनके बच्चे मिलकर परिवार की संरचना करते है और समाज की निरन्तरता को बनाए रखते हैं। यही कारण है कि परिवार सभ्यता के विकास के साथ प्रारम्भ से जुड़ा है। परिवार को प्रथम पाठशाला भी कहते है। परिवार में सम्मान करना, आपसी प्रेम, मित्रता, संवेदनशीलता आदि सीखने को मिलता है।

3.2 उद्देश्य

1. इस इकाई में परिवार की अवधारणा को जान पाएगें।
2. इस इकाई में परिवार के माध्यम से लिंग की भूमिका का अध्ययन कर पाएगें।

3. लैंगिकता हेतु समाजीकरण में परिवार की भूमिका को जान सकेंगे।

3.3 परिवार

समूह या सदस्यों के सन्दर्भ में परिवार एक समिति है। परिवार को जब नियमें या कार्यपद्धतियों के सन्दर्भ में देखा जाता है तो यह एक संस्था है। परिवार को चाहे समिति के दृष्टिकोण से देखें या संस्था के, पर इस तथ्य पर दो मत नहीं हो सकते है कि परिवार समाज की महत्वपूर्ण मौलिक एवं सार्वभौम इकाई है। परन्तु सभी समाजों में परिवार का एक ही रुप प्रचलित नहीं है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी समाजों में एकाकी परिवार या दाम्पत्य परिवार की प्रधानता है, जबकि भारतीय समाज में संयुक्त परिवार या विस्तृत परिवार की। सामाजिक जीवन को बनाने एवं समाजीकरण में परिवार की विशेष भूमिका है। इसी कारण चार्ल्स कूले ने परिवार को एक महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह माना है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार- ‘‘परिवार पर्याप्त निश्चित एवं टिकाउ यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक समूह है, जो प्रजनन (बच्चों के जन्म) तथा बच्चों के पालन-पोषण की व्यवस्था करने की क्षमता रखता है।’’

ऑगबर्न एवं निमकॉफ के अनुसार- ‘‘परिवार पति और पत्नी की सन्तान रहित या सन्तान सहित या केवल पुरुष या स्त्री की बच्चों सहित, कम या अधिक स्थायी, समिति है।’’

3.4 परिवार के माध्यम से लिंग की भूमिका

प्रत्येक समाज में विवाह और परिवार के महत्व को स्वीकार किया गया है। परिवार समाज की रीढ़ की हड्डी के जैसा होता है। परिवार ही बच्चे का प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र होता है। वहां वह जन्म से बड़े होने तक संस्कार ग्रहण करता है। जीवन-यापन के तौर-तरीके और सभ्य समाज के आचार-विचार सभी कुछ सीखता रहता है। परिवार मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। जिसके द्वारा उसके सामाजिक प्राणी होने की बात स्पष्ट होती है। मनुष्य, समाज परिवार रूपी छोटी-छोटी इकाइयों में बंटा हुआ उन्नति करता रहता है।

परिवार मनुष्य की कई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साथ ही एक सम्पूर्ण, संतुष्ट और सुखी जीवन के लिए परिवार की ही महती आवश्यकता होती है। परिवार को बनाए रखने का दायित्व केवल स्त्रियों पर ही नहीं वरन पुरुषों पर भी बराबर का सा होता है। प्रत्येक को अपने हिस्से के कार्य पूर्ण कुशलता से करने होते हैं तभी घर का संचालन सही ढंग से हो सकता है। घर में रहने वाले प्रत्येक सदस्य का महत्व होता है। कई लोगों से मिलकर ही घर बनता है। घर में माता-पिता की संतानें ही होती हैं।

परिवार घर के सदस्यों से बनता है। घर के फर्नीचर, दीवारों या सामान से नहीं। परिवार को बनाए रखने के लिए सभी के बीच परस्पर समन्वय होना आवश्यक होता है। परिवार रूपी गाड़ी का एक पहिया भी पटरी से उतरा नहीं कि गाड़ी डगमगा जाती है। परिवार में सभी सदस्यों के बीच आपसी सौहार्द, मेल-मिलाप, त्याग और सहयोग की भावना का होना आवश्यक है वरना घर को बिखरते देर नहीं लगती। सभी का सहयोग इसमें आवश्यक है। यदि घर के सदस्यों में सही तालमेल नहीं होता तो प्रायः छोटी-छोटी बातों पर डागड़े होते रहते हैं। बात-बात पर तकरार और मतभेद होते हैं। इस प्रकार के झगड़े प्रायः घर की शांति को भंग कर उसे लड़ाई का सा मैदान बना देते है। आए दिन के झगड़े और तकरारों के कारण मन और शरीर दोनों ही अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। कई बार परिवार के सदस्य बीमार भी पड़ जाते हैं। आपसी तालमेल की कमी मानसिक शांति को भंग कर देती है। परिणाम, कई बार घर टूटने की नौबत आ जाती है। यदि घर में स्वस्थ वातावरण न हो तो इसका असर बच्चों के मानसिक विकास पर पड़ता है। वे अवहेलना के भी शिकार हो जाते हैं। कई बार बच्चे बड़ों की देखा-देखी वही व्यवहार अपना लेते हैं और धीरे-धीरे उनकी आदतें पक्की होती जाती हैं।

अकसर बच्चों को अभद्र व्यवहार करते देखा जाता है। सभ्य लोग इसे परिवार के लोगों की लापरवाही ही मानते हैं। क्योंकि बच्चे अपने परिवार का प्रतिरूप कहे जाते हैं। कम आयु और मार्गदर्शन की कमी के कारण बच्चे भी वही व्यवहार करने लगते हैं जो वे अपने घरों में प्रायः देखा करते हैं। इस प्रकार घर की चार-दीवारी के अन्दर घटने वाली घटनाओं का प्रतिबिम्ब घर के बाहर नजर आने लग जाता है। वर्तमान में, पाश्चात्य संस्कृति के झोंके में लोग भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। वैसे यह कहना ज्यादा उचित होगा कि हमने पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को कम और अवगुणों को अधिक ग्रहण किया हुआ है। सभ्य आचार-विचार की जगह खुलापन और शिक्षा की जगह फूहड़ता को ग्रहण किया हुआ है। आदमी की मौलिक प्रवृत्ति आदिम ही होती है। अतः पाश्चात्य सभ्यता में जो खुलापन या आजादी थी उसे बेशर्मी और नंगेपन के रूप में अपना लिया है।

वास्तव में हमारे देश में अर्थ का अनर्थ ही ज्यादा लगाया जाता है। विकास, आजादी और उन्मुक्तता को भौतिक साधनों पर आरोपित कर दिया गया है। अपने आचार-विचार और संस्कारों का त्याग कर दिया गया है। समाज में आए इन परिवर्तनों का सीधा असर पारिवारिक जीवन पर पड़ा है। पहले हमारे यहां दया, सहिष्णुता, सामंजस्य, धैर्य इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी, ये सभी तत्त्व वास्तव में पारिवारिक जीवन से जुड़े हुए थे। किन्तु आज के जमाने में ये गुण दरकिनार कर दिए गए हैं। फलस्वरूप परिवारों में विघटन और असंतोष फैलता जा रहा है।

पहले बच्चे सदैव अपने माता-पिता के आचरण का अनुगमन करते थे। अतः परिवार में माता-पिता की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती थी। किन्तु आज बच्चे और युवा दूरदर्शन, फिल्मों और बाहर की दुनिया को ज्यादा ग्रहण करते हैं। इससे परिवार में बड़ों की भूमिका एक तरह से गौण-सी ही होकर रह गई है। दूसरी तरफ, यदि

माता-पिता अपने व्यवहार को संतुलित नहीं रखते तो इसका असर उनके बच्चों पर भी अवश्य ही पड़ता है। माता-पिता को बच्चे का प्रथम गुरु और घर परिवार को प्रथम पाठशाला कहा गया है। गुरु ही यदि पथभ्रष्ट और कुसंस्कारी हो तो शिष्यों से क्या अपेक्षा की जा सकती है। ऐसे में माता-पिता और बड़ों को भी अपने व्यवहार के प्रति अति सजग रहने की आवश्यकता है। यदि आप बच्चों को सही शिक्षा देना चाहते हैं तो सबसे पहले उसे स्वयं पर लागू करना चाहिए। हर परिवार के अपने नियम-कायदे, संस्कार एवं मान्यताएं होती है।

परिवार में सबसे बड़ी भूमिका स्त्रियों की होती है। स्त्रियां परिवार की धुरी होती है। जमाना चाहे जितना भी बदल जाए या लोगों की सोच में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो जाए, स्त्रियां हमेशा से परिवार की घुरी रही हैं और रहेंगी। यदि आप स्त्रियों से पूछें तो ज्ञात होगा कि परिवार में केन्द्रीय भूमिका निभाते हुए अधिकांश स्त्रियां प्रसन्न होती हैं और गर्व का अनुभव भी करती हैं। ईश्वर ने स्त्री को वह क्षमता वह सामर्थ्य और वे गुण दिए हैं कि घर के संचालन मे वे सहज ही निपुण होती हैं। वास्तव में इसके पीछे कारण यह है कि स्त्रियों की दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म होती है और मेघा तार्किक। वे प्रत्येक चीज के कारण और निवारण पर सूक्ष्म दृष्टि रखती हैं। छोटी-छोटी वस्तु भी सदैव उनके ध्यान में रहती है। प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता के बारे में उनसे अच्छा कोई और जान ही नहीं सकता। जहां तक पुरुषों का सवाल है, कहा जा सकता है कि पुरुषों में शारीरिक बल अधिक होता है। वे इसका उपयोग विशिष्ट कार्यों में करने की मनोवृत्ति रखते हैं। घर के छोटे-छोटे कार्य उनकी अतिरिक्त शक्ति और धैर्य को तोड़ देते हैं। इसलिए पुरुष घर में छोटे-मोटे काम करने में रुचि लेते ही नहीं हैं।

घर में रात-दिन कोई न कोई कार्य चलता रहता है। गृहिणी को हमेशा व्यस्त रहना पड़ता है। इसके साथ ही रिश्तों और संबंधों के विषय में भी स्त्रियां ही चतुरता अधिक रखती हैं। पुरुष संबंधों के जटिल जाल से सदैव बचते रहते हैं किन्तु स्त्रियां इन्हें निभाने में मुख्य भूमिका निभाती है। अतः स्वतः ही यह जिम्मेदारी स्त्रियों पर डाल दी जाती है। या यह भी कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन के प्रारम्भ में ही स्त्री और पुरुष के मध्य यह अव्यक्त समझौता हो गया। दोनों ने ही अपनी भूमिकाओं को सहज रूप से स्वीकार कर लिया। पुरुष ने यदि पालन का दायित्व उठा लिया तो स्त्री ने पोषण का दायित्व वहन कर लिया। अपनी-अपनी शारीरिक क्षमताओं और योग्यताओं के आधार पर कार्य का निर्धारण आपसी तालमेल से कर लिया गया।

लेकिन गृहस्थी में कार्यों के अलावा संबंधों का भी महत्व होता है। जिनको निभाने में स्त्री और पुरुष दोनों की बराबर की भागीदारी होती है। यदि एक-दूसरे का सहयोग न किया जाए तो आपस में मनमुटाव हो सकता है। इस प्रकार के घरेलू जीवन के उपद्रवों से बचने के लिए संयम और समझदारी की आवश्यकता होती ही है।

वस्तुतः परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो एकल परिवार होते हैं, जिसमें विशेषतया पति-पत्नी और बच्चे ही होते हैं। दूसरा संयुक्त परिवार, जिसमें बहुत बड़ा कुनबा होता है। एकल परिवार व्यक्ति का अपना

निजी परिवार होता है। इसके सदस्य एवं सबंध सीमित होते हैं। इस प्रकार के परिवार अधिकांशतया शहरों में ही अधिक होते है। किन्तु एकल परिवार से भी अन्य करीबी रिश्तेदार जुड़े होते हैं. यथा मामा-मामी, फूफा फूफी आदि-आदि। अब चाहे ये रिश्ते एक छत के नीचे न रहते हों। फिर भी आपस में मिलने-जुलने, आते-जाते रहते हैं। एक-दूसरे के काम भी आते रहते हैं। आपसी संबंध बनाए रखते हैं।

शहरों के एकल परिवार में केन्द्रीय भूमिका दोनों ही लिगो (स्त्री-पुरुष) की रहती है। पति-पत्नी आपसी सहयोग से सारे पारिवारिक दायित्व पूरे करते रहते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि परिवार में दोनों ही लिंगों की भूमिका प्रमुख रहती है। शहरों में एकल परिवारों में जहां दोनों ही काम करते हैं. वहां भी वे कुशलता, साझेदारी और समझादारी से अपने परिवार की सारी जिम्मेदारियों को कुशलता से पूरा करते हैं और जिन परिवारों में ऐसा नहीं होता है वहां आपसी सहयोग से परिवार के सारे दायित्वों को निभाना ही अति उत्तम माना जाता है।

अब बात आती है समाज की। जिस प्रकार स्त्री को पुरुष की रीढ़ की हड्डी लैगिकता माना जाता है, उसी प्रकार परिवार भी समाज की रीढ़ की हड्डी का कार्य करता है। देखने में आता है कि आज भारतीय समाज परिवर्तन के भारी दौर से अपनी मंजिल तय कर रहा है। आज लोग पुरानी मान्यताओं से मुक्ति भी पाना चाहते हैं और पुरानी मान्यताओं को छोड़ना भी नहीं चाहते हैं। वे नई मान्यताओं को भी समाज में स्थापित करना चाहते हैं। जबकि होना ये चाहिए कि पुरातन में या नवीनतम में जो भी सर्वहितकारी बातें ध् रीति-रिवाज हों, उन्हें अपनाते हुए संतुलित मार्ग अपनाना अधिक हितकर रहेगा। भारतीय समाज में प्रत्येक विषय पर गहनता से विचार-विमर्श किया गया है। सभी क्षेत्रों में विविध प्रयोग किए गए हैं इसलिए भारतीय समाज विकास और प्रगति के मार्ग पर निरंतर कदम बढ़ाता रहा है।

प्रत्येक क्षेत्र में आने वाले परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति के जीवन और उसकी सोच पर भी पड़े बिना नहीं रहता। आज का भारतीय समाज पाश्चात्य और आधुनिक जीवन शैली को अपनाने की अंधी होड़ में स्वयं को लगाए हुए है। इसके दुष्परिणाम भी समाज में आने शुरू हो गए हैं, यथा-हिंसा, अस्थिरता, अविश्वास, आत्म हत्या, आगे बढ़ने की दौड़ अधिक प्राप्ति की लालसा, दुविधा की स्थिति आदि-आदि। इन्हीं सब विपरीत परिणामों को देखते हुए भारतीय समाज पुनः अपनी पुरानी जड़ों की ओर लौटने की राह तलाशने लगा है। आज का भारतीय समाज समृद्ध पारिवारिक जीवन भी जीना चाहता है और साथ ही निजता और स्वतंत्र व्यक्तित्त्व भी। सो, घर-परिवार में भी रहकर आज का समाज निजता और व्यक्तित्व का विकास भी कर सकता है। कारण परिवार ही वह मुख्य कारक होता है जो व्यक्ति को विशेष बनाने की क्षमता रखता है। एक स्वस्थ और सधा हुआ संस्कारिक घर-परिवार ही अच्छे समाज की नींव होता है। ऐसे ही समाज के कंधों पर सुदृढ़ राष्ट्र का सुदृढ़ भवन खड़ा रहता है। और यही उज्ज्वल भविष्य का भी प्रतीक माना जाता है।

3.5 लैंगिकता हेतु समाजीकरण में परिवार की भूमिका (Role of Family in Gendered Socialization)

समाज में जाति, भाषा, धर्म, रंग, प्रजाति, देश तथा जन्मस्थान के आधार पर मनुष्य सदियों से एक-दूसरे के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करता आया है। इसी प्रकार का एक गंभीर भेदभाव लिंग के आधार पर भी देखने को मिलता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वर की अमूल्य कृतियाँ हैं, या यूँ कहें कि वे एक ही व्यक्ति की दो आँखों के समान हैं। इसके बावजूद समाज में स्त्रियों को प्रायः पुरुषों से निम्न समझा जाता है और उन्हें सम्मानपूर्ण समानता का व्यवहार नहीं मिलता। चूँकि किसी भी व्यक्ति के विचारों, आदर्शों, मान्यताओं और दृष्टिकोण की नींव परिवार में ही पड़ती है, इसलिए इस ज्वलंत समस्या के समाधान का प्रयास पारिवारिक पृष्ठभूमि से ही किया जाना चाहिए। इसी उद्देश्य से निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत इस विषय पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है-

(1) सर्वांगीण विकास का कार्य

(2) समानता का व्यवहार

(3) समान शिक्षा की व्यवस्था

(4) उदार दृष्टिकोण का विकास

(5) बालिकाओं के महत्त्व से अवगत कराना।

(6) साथ-साथ रहने, कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास।

(7) पारिवारिक कार्यों में समान सहभागिता ।

(8) हीनतायुक्त शब्दावली का प्रयोग निषेध।

(९) सामाजिक वातावरण में बदलाव।

(10) अन्धविश्वासों तथा जड़ परम्पराओं का बहिष्कार।

(11) उच्च चरित्र तथा व्यक्तित्त्व का निर्माण ।

(12) व्यावसायिक कुशलता की शिक्षा।

(13) जिम्मेदारियों का अभेदपूर्ण वितरण ।

(14) आर्थिक संसाधनों पर एकाधिकार की प्रवृत्ति का समापन।

(15) बालिकाओं को आत्म-प्रकाशन के अवसरों की प्रधानता।

(16) सशक्त बनाना।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

1. **सर्वांगीण विकास का कार्य-** सर्वांगीण विकास से तात्पर्य शरीर, मन तथा बुद्धि का समन्वयकारी विकास है। परिवार को अपने सभी बच्चे, चाहे वह लड़का हो या वे लड़की हो सर्वांगीण विकास के प्रयास दोनो के लिए करने चाहिए जिससे उनमें किसी भी प्रकार की हीनता का भाव न पनप सके। जिन बालकों का सर्वांगीण विकास नहीं होता, उनमें हीनता की भावना व्याप्त रहती है परिणामस्वरुप वे विकृत मानसिकता के शिकार होकर लैंगिक भेदभावों को जन्म देते हैं तथा महिलाओं के प्रति संकीर्ण विचार रखते हैं।
2. **समानता का व्यवहार**- परिवार में यदि लड़के-लड़कियों के प्रति समानता का व्यवहार किया जाता है तो ऐसे परिवारों में लैंगीय भेदभाव कम होते हैं। समानता के व्यवहार के अन्तर्गत लड़कियों तथा लड़कों को पारिवारिक कार्यों में समान स्थान, समान शिक्षा, रहन-सहन और खान-पान की सुविधाएं प्राप्त होती चाहिए, जिससे प्रारम्भ से ही बालकों में श्रेष्ठता का बोध स्थापित न हो और वे बालिकाओं और भविष्य में महिलाओं के साथ समान व्यवहार करेंगे। पारिवारिक सदस्यों को चाहिए कि वे लिंगीय टिप्पणियां, भेदभाव तथा शाब्दिक निन्दा और दुर्व्यवहार कदापि न करें क्योंकि बालक जैसा देखता है वैसा ही अनुकरण करता है। इस प्रकार परिवार में किया जाने वाला समानता का व्यवहार लैंगिक भेदभावको करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. **समान शिक्षा की व्यवस्था -** परिवारों में प्रायः देखा जाता है लड़के-लड़कियों की शिक्षा व्यवस्था में असमानता का व्यवहार किया जाता है जिससे लड़कियां उपेक्षित और पिछड़ी रह जाती है। लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था भी लड़को के बराबर ही करनी चाहिए परन्तु पैसे इत्यादि की समस्याओं के कारण लड़कियों की रुचियां इत्यादि के अनुरूप शिक्षा-व्यवस्था नहीं मिल पाती है, जिससे वह स्वावलम्बी नहीं बन पाती हैं। अतः लैंगिक भेदभाव को कम करने के लिए लड़कों के समान ही लड़कियों को शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

4. **उदार दृष्टिकोण का विकास -** परिवारों में महिलाओं और लड़कियों के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण बढ़ता जाता है। पारिवारिक कायों तथा महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लेते समय महिलाओं की राय पूछी तक नहीं जाती है और यही भाव परिवार की भावी पीढ़ियों में भी व्याप्त हो जाता है। महिलाओं को कठोर सामाजिक और पारिवारिक प्रतिबन्धों में रहना पड़ता है। इस प्रकार परिवार के सदस्यों तथा रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं में

महिलाओं के प्रति उदार दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए। इस प्रकार महिलाओं को भी समुचित स्थान पर सम्मान तथा उनको समानता का अधिकार देना चाहिए।

5. **बालिकाओं के महत्त्व से अवगत कराना -** परिवार को चाहिए कि वह अपने बालकों को बालिकाओं के महत्त्व से परिचित कराये जिससे वे उन पर धाक जमाने के बजाय सम्मान करना सीखें। बालिकाएं ही बहन, माता, पत्नी आदि है और इन रूपों की उपेक्षा करके पुरुष का जीवन अपूर्ण रह जायेगा।

6. **साथ-साथ रहते, कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास-** परिवार परस्पर सहयोग की नींव डालता है अपने सदस्यों में, जिससे स्त्री-पुरुष के मध्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता है, क्योंकि कार्य-सम्पादन में दोनों ही एक-दूसरे का सहयोग कर रहे हैं। साथ-साथ कार्य करने को प्रकृति के द्वारा महिलाओं की महत्ता स्थापित होती है जिससे लैंगिक भेदभावों में कमी आती है।

7. **पारिवारिक कायों में समान सहभागिता-** परिवार अपने सभी सदस्यों की रुचि के अनुरुप कार्यों में सहभागिता सुनिश्चित करनी चाहिए, न कि लिंग के आधार पर। अधिकांश परिवारों में लड़की और लड़कियों के लिए कार्यों का एक दायरा बना दिया जाता है जो उचित है। इससे लड़कियां कभी भी बाहरी दुनिया और बाहा्र कार्यों को कर नहीं पाती है और उन्हें इस हेतु अयोग्य समझा जाता है और बाहरी कार्यों को करने में स्वयं भी असहज महसूस करने लगती है।

8. **हीनतायुक्त शब्दावली का प्रयोग निषेध-** परिवार में भाषा का प्रयोग कैसा हो रहा है इसका प्रभाव भी लैंगिक भेदभावों पर पड़ता है। कुछ परिवारों में लड़कियों और महिलाओं के लिये हीनतायुक्त शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जिससे वे हीन भावना की शिकार हो जाती है और बालकों का मनोबल बढ़ता है। वे भी बालिकाओं को सदैव हीन समझकर उनके लिये हीनतायुक्त शब्दावली का प्रयोग करते हैं जिससे लैंगिक भेदभावों को बढ़ावा मिलता है।

9. **सामाजिक वातावरण में बदलाव-** परिवार को चाहिये कि वह लड़के-लड़की में किसी भी प्रकार का भेदभाव न करें। ऐसी सामाजिक परम्पराएँ जिसमें लड़कियों के प्रति भेदभाव किया जाता है और उनकी सामाजिक स्थिति में ह्रास आता हो, ऐसी स्थितियों में परिवार को बदलाव लाने की पहल करनी चाहिये। परिवार से ही सामाजिक वातावरण को सुधारा जा सकता है। क्योंकि समान परिवार का समूह होता है। इस प्रकार परिवार को लैंगिक भेदभावों तथा महिलाओं की उन्नत स्थिति हेतु कृतसंकल्प होना चाहिये जिससे सामाजिक कुरीतियों और भेदभावपूर्ण व्यवहार की समाप्ति की जा सके।

10. **अन्धविश्वासों तथा जड़ परम्पराओं का बहिष्कार-** लड़के ही वंश चलाते हैं, वे ही नरक से पिता को बचाते हैं, पैतृक कर्मों तथा सम्पत्तियों को वही संचालित करते हैं, पुत्र ही अन्त्येष्टि तथा पिण्डदान इत्यादि कार्य करते हैं। इस प्रकार के कई अन्धविश्वास और जड़ परम्पराएँ परिवारों में मानी जाती है। अतः इन परम्पराओं और विश्वासें को तार्किकता की कसौटी पर कसना चाहिए। यदि परिवार इन जड़ परम्पराओं, अन्धविश्वासों और कुरीतियों के प्रति जागरूक हो जोय तो स्त्रियों की स्थिति स्वतः उन्नत हो जायेगी।

11. **उच्च चरित्र तथा व्यक्तित्व का निर्माण-** परिवारों को चाहिए कि वे अपनी संततियों के उच्च चरित्र तथा सुदृढ़ व्यक्तित्व निर्माण पर बल दें। उच्च चरित्र और व्यक्तित्व-सम्पन्न व्यक्ति अपने अस्तित्व के साथ-साथ सभी के अस्तित्व का आदर करता है। स्वामी विवकानन्द, महात्मा गाँधी आदि उच्च चरित्र तक सुदृढ़ व्यक्तित्व वाले नायकों ने स्त्रियों की समानता पर बल दिया। इस प्रकार चारित्रिक और व्यक्तित्व के विकास के द्वारा परिवार लौंगिक भेदभावों में कमी करने का प्रयास कर सकते हैं।

12. **व्यावसायिक कुशलता की शिक्षा-** परिवार को चाहिए कि वह अपने सभी सदस्यों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनकी व्यावसायिक कुशलता की उन्नति हेतु प्रयास करें। यह शिक्षा परिवार द्वारा औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार से प्राप्त कराने का प्रबन्ध किया जा सकता है। जब परिवार के सभी सदस्य अपने-अपने कार्यों में संलग्न रहेंगे तो उनके विचारों और सोच में गतिशीलता आयेगी जिससे लैंगिक भेदभावों में कमी आयेगी।

13. **जिम्मेदारियों का अभेदपूर्ण वितरण-** परिवार में स्त्री-पुरूष, लड़के-लड़कियों के मध्य लिंग के आधार पर भेदभाव न करके सभी प्रकार की जिम्मेदारियाँ बिना भेदभाव के प्रदान करनी चाहिए, जिससे लैंगिक भेदभाव की बात तक भी दिमाग में न आये।

14. **आर्थिक संसाधनों पर एकाधिकार की प्रवृत्ति का समापन**- परिवार को चाहिए कि वह आर्थिक संसाधनों का इस प्रकार प्रबन्धन और वितरण करें कि स्त्री-पुरूष में किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव न रहे। पिता की सम्पत्ति में हमारे यहॉ पुत्र का अधिकार तो समझा जाता है, परन्तु पुत्रियों का कोई भी अधिकार नहीं समझा जाता, जिससे वे सदैव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक रूप में पुरूषों पर निर्भर हो जाती हैं। इस प्रकार आर्थिक संसाधनों पर वर्ग के एकाधिकार की समाप्ति का परिवार लैंगिक भेदभावों को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं।

3.6 सारांश

लैंगिक संवेदनशीलता सीखने की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। इससे स्त्री-पुरुष समानता और महिलाओं की गरिमा को बनाये रखा जाना चाहिए। लैंगिक संवेदनशीलता की शिक्षा परिवार से शुरु होनी चाहिए जहां लड़के और लड़की के बीच भेदभाव एक सांस्कृतिक और समाजीकरण की प्रक्रिया के रुप में उपस्थित रहती है। वही यह पड़ोस, विद्यालय एवं पूरे समाज में विस्तार ले लेती है। संक्षेप में कहें तो घर और समाज में स्त्री और पुरुष दोनों की ही खास भूमिकाएं होती है। इन दोनों विपरीत लिंगों के सायुज्य से ही घर और समाज का निर्माण होता है। ये दोनों लिंग घर और समाज की धुरी के समान होते हैं।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रॉबिन फॉक्स, नातेदारी एवं विवाह
2. पाठक, डॉ सुमेधा, (1986), लिंग, विद्यालय और समाज, प्रकाशकः नीलकमल
3. Dr. Senllina, Gender Analysis of State Policies: A Case Study of Chhattisgarh.
4. R. Govinda, Towards Gender Equality in Education: Progress and Challenges in Asia-Pacific Region, National University of Educational Planning and Administration, New Delhi.
5. Bhattacharjee, Nandini (1999), Through the Looking Glass: Gender Socialisation in a Primary School in T.S. Sarswathi (ed). Culture, Socialization and Human Development: Theory Research and Applications in India, Sage: New Delhi.

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवार की अवधारणा एवं परिवार के माध्यम से लिंग की भूमिका की समीक्षा कीजिए।
2. लैंगिकता हेतु समाजीकरण में परिवार की भूमिका का वर्णन कीजिए।

इकाई- 04 **विवाह**

Marriage

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 विवाह की परिभाषाएँ

4.4 हिन्दू विवाह के उद्देश्य

4.5 हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में

4.6 विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता

4.7 विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकता

4.8 सारांश

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4. 1 प्रस्तावना

विवाह एक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। यह वह आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा मानव का अस्तित्व बना हुआ है। समाज की निरन्तरता का आधार सन्तान है तथा सन्तान की उत्पत्ति जन्म पर आधारित होती है। जन्म के लिए स्त्रियों व पुरुषों का लैंगिक (यौन) सम्बन्ध आवश्यक है। समाज द्वारा लैंगिक सम्बन्धों को कानून एवं प्रथाओं द्वारा नियमित करने के उद्देश्य से ही विवाह नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रत्येक समाज के सांस्कृतिक तथा सामाजिक नियमों का प्रभाव विवाह पर पड़ता है जिसके कारण इसके उद्देश्यों में भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दू विवाह का प्रमुख उद्देश्य धर्म का पालन, सन्तानोत्पादन एवं यौन आकांक्षा की पूर्ति है। हिन्दू विवाह में धर्म को प्रधानता दी गई है, यौन तृप्ति को प्रधानता नहीं दी गई है। मुसलमानों में विवाह (निकाह) एक कानूनी संविदा है जिसका लक्ष्य पति-पत्नी के यौन सम्बन्धों तथा उनकी सन्तान के सम्बन्धों व उनके पारस्परिक अधिकारों तथा कर्तव्यों को वैधता प्रदान करना है। मॉर्गन, मैलिनोव्स्की आदि विचारकों ने विवाह को प्रमुख रूप से यौन सन्तुष्टि

का आधार माना है। प्रस्तुत अध्याय में विवाह का अर्थ बताकर भारत के प्रमुख सम्प्रदायों में विवाह को संस्था को समझाने का प्रयास किया गया है।

4.2 उद्देश्य

1. इस इकाई में विवाह की परिभाषा को जान पाएगें।

2. इस इकाई में हिन्दू विवाह के उद्देश्य एवं हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में अध्ययन कर पाएगें।

3. विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकता को जान सकेंगे।

4.3 विवाह की परिभाषाएँ

विवाह समाज द्वारा स्वीकृत यौन सम्बन्धों को नियमित करने से सम्बन्धित एक सामाजिक सांस्कृतिक संस्था है जो विवाह के बन्धन में बंधने वाले स्त्री-पुरुष को पत्नी और पति की प्रस्थिति प्रदान करती हैं। प्रमुख विद्वानों ने विवाह की परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार से दी है-

(1) बेस्टरमार्क (Westermarck) के अनुसार "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला यौन सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा मान्य होता है तथा जिसमें दोनों पक्षों तथा उनके बच्चों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का समावेश होता है।'"

(2) लॉवी (Lowie) के अनुसार विवाह उन स्वीकृत संगठनों को व्यक्त करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष (यौन सन्तुष्टि) के अतिरिक्त भी स्थिर रहता है तथा पारिवारिक जीवन को आधार प्रदान करता है।

(3) बोगार्डस (Bogardus) के अनुसार विवाह स्त्री और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराने वाली संस्था है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है विवाह समाज द्वारा स्वीकृत एक सामाजिक संस्था है। यह दो विषमलिगी व्यक्तियों को यौन सम्बन्ध स्थापित करने के अधिकार प्रदान करती है। विवाह सम्बन्ध बहुत वयाओक होते हैं।

4.4 हिन्दू विवाह के उद्देश्य (Aims of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह के तीन प्रमुख उद्देश्य अथवा आदर्श (Ideals) बताए गए हैं। ये निम्नलिखित है-

(1) धर्म (Dharma)- हिन्दुओं में विवाह का सबसे प्रमुख उद्देश्य अपने धार्मिक कर्तव्य का पालन करना है। सभी धार्मिक कार्यों के निष्पादन के लिए पति एवं पत्नी का एक साथ भाग लेना आवश्यक है। वेदों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि एक हिन्दू को अपने धर्म का पालन अपनी पत्नी के साथ करना चाहिए। 'शतपथ ब्राह्मण' ग्रन्थ के अनुसार, "पत्नी पति का आधा अंग है।" याज्ञवल्क्य ऋषि का विचार है कि, "एक पत्नी की मृत्यु के बाद, तुरन्त दूसरा विवाह कर लेना चाहिए जिससे धार्मिक क्रिया चलती रहे।" पाँच महायज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ) को करना परम आवश्यक है और सभी यज्ञ तभी सम्पादित हो सकते हैं, जब व्यक्ति विवाहित हो। रामचन्द्र जी अश्वमेध यज्ञ तब तक पूर्ण नहीं कर सके थे जब तक उन्होंने सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर अपने पास स्थापित नहीं कर ली। कपाडिया का कथन है कि जब हिन्दू विचारकों ने धर्म को विवाह का प्रथम तथा सर्वोच्च लक्ष्य माना व दूसरा स्थान सन्तानोत्पत्ति को दिया, तो स्वाभाविक है कि विवाह पर धर्म का आधिपत्य हो जाता है।

(2) प्रजा या सन्तान (Children)- हिन्दू विवाह का दूसरा उद्देश्य पितृ ऋण चुकाना है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को तीन प्रकार के ऋण चुकाने पड़ते हैं (1) देव ऋण, (ii) ऋषि ऋण तथा (iii) पितृ ऋण। पितृ ऋण चुकाने के लिए पिता के वंश को आगे बढ़ाना अनिवार्य है अर्थात् पुत्र प्राप्ति अनिवार्य है क्योंकि पितरों के तर्पण और पिण्डदान के लिए पुत्र अति आवश्यक है। विवाह सन्तानोत्पत्ति की समाज द्वारा स्वीकृत प्रणाली है। वैसे मनु ने पुत्र प्राप्ति को विवाह का प्रथम उद्देश्य माना है। 'मनु-संहिता' के अनुसार पुत्र वह है जो पिता को नरक से बचाए। अतः पुत्र की प्राप्ति विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है।

(3) रति या आनन्द (Sexual enjoyment)- हिन्दू विवाह का तीसरा उद्देश्य रति या आनन्द है। विवाह यौन सन्तुष्टि अथवा काम वासना की पूर्ति का भी साधन है। यद्यपि यौन सन्तुष्टि हिन्दू विवाह का उद्देश्य माना गया है, परन्तु फिर भी धार्मिक संस्कार होने के नाते इसे सबसे निम्न अर्थात् तीसरा स्थान दिया गया है। हिन्दू विवाह में पहला और दूसरा उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। शास्त्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अगर कोई द्विज वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य) का व्यक्ति केवल रति के लिए विवाह करता है तो वह शूद्र के समान है।

4.5 हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में (Hindu Marriage as a Sacrament)

हिन्दू विवाह को एक धार्मिक कृत्य अथवा संस्कार कहा गया है। हिन्दुओं में विवाह यौन सन्तुष्टि का ही मार्ग नहीं है अपितु धर्म भी है जो व्यक्ति को उनके धार्मिक कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। पी० एच० प्रभु का कहना है कि, "हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार है, तथा इस कारण विवाह सम्बन्ध द्वारा जुड़ने वाले पों का सम्बन्ध संस्कार रूप है, न कि समझौते की प्रकृति का। इस सम्बन्ध में के० एम० कपाडिया का कान है कि, "हिन्दू विवाह एक संस्कार है। यह पवित्र समझा जाता है क्योंकि यह तभी पूर्ण होता है जबकि या पवित्र मन्त्रों के साथ किया जाए।" 'संस्कार' शब्द से अभिप्राय विशेष प्रकार से की जाने वाली धार्मिक किया से है। आर० एन० सक्सेना (R.

N. Saxena) के शब्दों में, "संस्कार शब्द का तात्पर्य ऐसे अनुहार से है जिसके द्वारा मानव जीवन की क्षमताओं का उद्घाटन होता है, जो मानव को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने वाले गुण प्रदान करता हैं तथा जिसके द्वारा व्यक्ति को विशेष सामाजिक स्तर प्रदान किया जाता है।

4.6 विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता

इस प्रकार विवाह प्रजनन के लिए सामाजिक स्वीकृति है जो परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। विवाह से जुड़े ऐसे अनेक अनुष्ठान और समारोह हैं जो प्रत्येक धर्म तथा संस्कृति में अलग-अलग हैं। यह ध्यान देने की बात है कि सामाजिक संविदा (करार) के रूप में विवाह दम्पति के सामने अनेक भूमिकाएं और उत्तरदायित्व प्रस्तुत करता है जिन पर व्यापक संदर्भ में पितृसत्तात्मक (Patriarchal) और मातृसत्तात्मक (Matriarchal) सामाजिक संरचनाओं द्वारा नियंत्रण किया जाता है। विवाह मानव प्रकृति का अभिन्न अंग नहीं है परंतु यह एक मानव निर्मित सामाजिक प्रथा और संस्था है जो प्रागैतिहासिक काल (Pre-historic Period) में भी मौजूद थी। यह एक प्राकृतिक संबंध नहीं है परंतु एक पुरुष और महिला के बीच उत्तरदायित्व है। संस्कृतिके उत्थान के साथ-साथ विवाह भी धार्मिक और कानूनी स्वीकृतियों के साथ एक सामाजिक कार्य (समारोह) हो गया।

अतः विवाह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें मानव लैंगिकता (Human Sexuality) को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इसने समाज की छोटी-छोटी इकाइयों जैसे परिवार के लिए एक आधार का सृजन करके सामाजिक जीवन को संभव बनाया है। मनुष्य अपने परिवारों से बहुत कुछ प्राप्त करते हैं तथा व्यापक सामाजिक पर्यावरण (परिवेश) में विभिन्न भूमिकाएं निभाने के लिए सामाजीकरण करते हैं। पारिवारिक जीवन आरंभ करने के लिए, एक महिला और पुरुष एक-दूसरे से विवाह करते हैं। किसी समाज में विवाह समारोहों का उद्देश्य समुदाय और समाज को सहसंबंध के बारे में जानने और इसका संरक्षण करने की अनुमति देना है। सामाजिक संस्थाओं के रूप में परिवार और विवाह का अर्थ मानव की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है जैसे सुरक्षा, स्नेह, प्रेम, देखरेख, अपनापन, पहचान और महत्व प्रदान करना।

विवाह के संबंध में भारतीय विचारों में अनेक आयाम है। एक ओर विवाह धार्मिक और नैतिक तथा दूसरी ओर सामाजिक और आर्थिक दायित्वों के साथ एक संस्कार है विवाह की हिंदी अवधारणा यह है कि यह एक संस्कार अथवा धर्म है अर्थात यह दो शरीरों का ही नहीं बल्कि दो आत्माओं का मिलन है। इसे एक अटूट बंधन माना जाता है जो केवल मृत्यु होने पर ही टूट सकता है। विवाह को वधूं को उसके पिता अथवा अन्य उपयुक्त संबंधी द्वारा वर को दिया जाने वाला अनुष्ठानिक उपहार माना गया है ताकि दोनों साथ-साथ अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें जोकि मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, इस्लाम कहता है कि विवाह एक संस्था है जिसे समाज के संरक्षण के लिए बनाया गया है ताकि मानव कपट और व्याभिचार से स्वयं की रक्षा कर सकें। इस्लाम में

विवाह प्रायः एक सिविल करार होता है जिसके उद्देश्य सामान्य पारिवारिक जीवन और संतान का वैधीकरण (Legalization) है। इसाईयोंमें विवाह को एक पुरुष और एक महिला के जीवन का स्वैच्छिक मेल माना गया है जिसमें दूसरों का बहिष्कार होता है तथा एकविवाह प्रथा (Monogamy) पर बल दिया गया है।

विवाह के कानूनी पहलू भी होते हैं। विवाह की कानूनी स्वीकृति मौजूदा सामाजिक मानदंडों और रीति-रिवाजों पर आधारित होती है। यह प्रत्येक समाज में अलग-अलग है। भारत में लड़कियों के लिए विवाह की कानूनी न्यूनतम आयु 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष हैं। इसलिए, धार्मिक और समाजशास्त्रीय साहित्य के अनुसार विवाहदो विभिन्न लिंगी व्यक्तियों का अपनी यौन विशेषताओं के आजीवन पर परस्पर संबंध का मेल है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जैविक, संवेगात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करना है। प्रायः एक बंधन के रूप विवाह विभिन्न अनुष्ठानोंऔर समारोहों को पूरा करने के साथ आरंभ होता है।

विवाह के कुछ व्यावहारिक अथवा उपयोगी पहलुओं का भली-भाँति उल्लेख किया जा सकता है। यह महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करता है जिन्हें गर्भावस्था और नवजात संतान की लंबी अवधियों से गुजरना पड़ता है। यह परिवारिक भूमिकाओं और कार्यों को अक्षुण्ण रखता है। यह समाज के लिए स्थिरता सुनिश्चित करता है तथा रक्त संबंधों को सरल बनाता है।

4.7 विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकता

विवाह केवल एक सामाजिक या कानूनी संस्था नहीं है, बल्कि यह दो व्यक्तियों के बीच सम्मान, सहयोग और समानता पर आधारित संबंध है। ऐसे में विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता का होना अत्यंत आवश्यक है, ताकि पति और पत्नी दोनों को समान अधिकार, अवसर और गरिमा प्राप्त हो सके। लैंगिक संवेदनशीलता विवाह में समानता को बढ़ावा देती है। परंपरागत रूप से महिलाओं पर घरेलू कार्यों और देखभाल की अधिक जिम्मेदारी डाली जाती रही है, जबकि पुरुषों को कमाने वाला माना गया है। लैंगिक संवेदनशील दृष्टिकोण इन भूमिकाओं को लचीला बनाता है और कार्यों के न्यायपूर्ण बँटवारे को प्रोत्साहित करता है।

1. समान जिम्मेदारी का बंटवारा

लैंगिक संवेदनशील विवाह में यह माना जाता है कि घर चलाना केवल किसी एक व्यक्ति की जिम्मेदारी नहीं है। घरेलू काम, बच्चों की देखभाल, बुज़ुर्गों की सेवा और आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ पति-पत्नी दोनों मिलकर निभाते हैं। इससे किसी एक पर काम का बोझ नहीं पड़ता और दोनों को बराबरी और सहयोग की भावना का अनुभव होता है। यह साझेदारी रिश्ते को संतुलित और मजबूत बनाती है।

2. आपसी सम्मान और जुड़ाव

जब पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं, जरूरतों, इच्छाओं और सीमाओं को समझते हैं और उनका सम्मान करते हैं, तो रिश्ते में भावनात्मक निकटता बढ़ती है। लैंगिक संवेदनशीलता एक-दूसरे को बराबर का साथी मानने की सोच विकसित करती है, जिससे विश्वास, अपनापन और घनिष्ठता (intimacy) मजबूत होती है।

3. रूढ़िवादिता को तोड़ना

लैंगिक संवेदनशीलता पारंपरिक धारणाओं जैसे—"पुरुष ही कमाएंगे" या "महिलाएँ ही घर संभालेंगी"—को चुनौती देती है। इससे पति और पत्नी दोनों अपनी रुचि, क्षमता और परिस्थितियों के अनुसार जीवन जी सकते हैं। यह सोच व्यक्ति को सामाजिक दबाव से मुक्त करती है और आत्मविश्वास बढ़ाती है।

4. बेहतर संचार

ऐसे विवाह में संवाद खुला और ईमानदार होता है। दोनों साथी बिना डर या झिझक के अपनी बात रख सकते हैं और एक-दूसरे को समझने का प्रयास करते हैं। इससे छोटी-छोटी बातों पर होने वाले विवाद, गलतफहमियाँ और तनाव कम होते हैं और समस्या का समाधान आसानी से हो पाता है।

5. मानसिक स्वास्थ्य और खुशी

जब दोनों साथियों को समान महत्व, सम्मान और स्वतंत्रता मिलती है, तो वे मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ रहते हैं। लैंगिक संवेदनशील रिश्ता तनाव, असंतोष और दबाव को कम करता है। इससे वैवाहिक जीवन में संतोष, खुशी और स्थायित्व बढ़ता है।

6. निर्णय लेने में समानता

लैंगिक संवेदनशील विवाह में परिवार और जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय—जैसे शिक्षा, करियर, आर्थिक योजनाएँ, संतान से जुड़े फैसले—पति-पत्नी दोनों की सहमति से लिए जाते हैं। इससे किसी एक का प्रभुत्व नहीं रहता और दोनों को अपनी राय रखने का अधिकार मिलता है, जो रिश्ते को लोकतांत्रिक और संतुलित बनाता है।

4.8 सारांश

पारिवारिक संबंधों में लैंगिक भूमिकाएँ यह तय करती हैं कि पुरुष और महिलाएँ एक-दूसरे से कैसे जुड़ते हैं और जिम्मेदारियों का बँटवारा किस प्रकार होता है। ये भूमिकाएँ स्थिर नहीं होतीं, बल्कि समय के साथ सामाजिक बदलावों, आर्थिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रभाव से विकसित होती रहती हैं। अतीत में लैंगिक भूमिकाएँ अधिक सख्त थीं, जहाँ पुरुषों को परिवार का कमाने वाला और महिलाओं को घरेलू कार्यों तक सीमित माना जाता था। वर्तमान समय में, विभिन्न प्रकार की पारिवारिक संरचनाओं और लैंगिक पहचान की बढ़ती स्वीकृति के कारण ये भूमिकाएँ पहले की तुलना में अधिक लचीली हो गई हैं।

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर के सक्सेना , भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थाएं
2. डी एन मजूमदार तथा टी एन मदन, सामाजिक मानवशास्त्र परिचय
3. के एम कपाड़िया, भारत में विवाह एवं परिवार

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विवाह का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं हिन्दू विवाह के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. विवाह की अवधारणा एवं विवाह में लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई- 05 **शिक्षा**

Education

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 शिक्षा का अर्थ
5.4 शिक्षा की परिभाषाऐं
5.5 शिक्षा की प्रकृति
5.6 शिक्षा का क्षेत्र
5.7 शिक्षा का उद्देश्य
5.8 शिक्षा के प्रकार
5.9 शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार
5.10 शिक्षा पर समाजशास्त्रीय आधार का प्रभाव
5.11 सारांश
5.12 पारिभाषिक शब्दावली
5.13 संदर्भ ग्रंथ
5.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा मानव जीवन का आधार है, जो व्यक्ति को ज्ञान, कौशल और मूल्य प्रदान करती है। यह केवल पुस्तकीय जानकारी तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक पक्ष को विकसित करता है। यह उसे समाज में जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करती है। शिक्षा का महत्व इस बात में निहित है कि यह व्यक्ति को सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है।

शिक्षा के विभिन्न रूप हैं – औपचारिक, अनौपचारिक और गैर-औपचारिक। औपचारिक शिक्षा विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संगठित रूप से दी जाती है, जहाँ निश्चित पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रणाली होती है। अनौपचारिक शिक्षा परिवार, समाज और अनुभवों से प्राप्त होती है, जो व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान और जीवन

कौशल देती है। वहीं गैर-औपचारिक शिक्षा उन लोगों के लिए है जो औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जैसे वयस्क शिक्षा, साक्षरता अभियान और व्यावसायिक प्रशिक्षण।

शिक्षा का समाजशास्त्रीय महत्व भी अत्यधिक है। यह समाज की परंपराओं, संस्कृति और मूल्यों को आगे बढ़ाती है तथा सामाजिक परिवर्तन का साधन बनती है। शिक्षा समानता, सहयोग और सामाजिक न्याय की भावना को विकसित करती है। आधुनिक युग में शिक्षा को आजीवन प्रक्रिया माना जाता है, जो निरंतर अनुभवों और ज्ञान के आदान-प्रदान से विकसित होती रहती है। इस प्रकार, शिक्षा न केवल व्यक्तिगत उन्नति का आधार है, बल्कि सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय विकास की नींव भी है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अनिवार्य है।

5.2 उद्देश्य

शिक्षार्थियो इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. शिक्षा का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति के संबंध में अपनी समझ बढ़ा सकेंगे।।
2. शिक्षा के उद्देश्य और प्रकार कितने होते हैं के संबंध में समझ सकेंगे।
3. शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधारों एवं आधारों के प्रभाव के संबंध में आप अपनी समझ को बढा सकेंगे।

5.3 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द अंग्रेजी भाषा के एजुकेशन (Education) शब्द का पर्यायवाची है। (Education) शब्द की उत्पत्ति लैटिन (Latin) भाषा के एडुकेटम (Educatum) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है-शिक्षित करना। (Educatum) शब्द ए (E) और (Duco) (Duco) दो शब्दों से मिलकर बना है। ए (E) का अर्थ है अन्दर से और ड्यूको (Duco) का अर्थ है आगे बढ़ाना। इस प्रकार (Educatum) शब्द का अर्थ हुआ बालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर विकसित करना अथवा बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना।

शिक्षा मनुष्य के जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा का मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से परोक्ष तथा अपरोक्ष सम्बन्ध होता है। मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी रुप में शिक्षा से प्रभावित होता है। मनुष्य जीवन के सभी पक्ष-शारीरिक, मानसिक, भौतिक, चारित्रिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक, व्यावसायिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आदि शिक्षा से जुड़े रहते है। ये सभी एक दूसरे को प्रभावित करते है तथा एक दूसरे से प्रभावित होते है। शिक्षा आन्तरिक वृद्धि तथा विकास की निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, और यह बालक के जन्म के तुरन्त बाद प्रारम्भ होती है तथा जीवन के अन्त तक चलती रहती है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ मनुष्य को एक योग्य मानव बनाना है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन को प्रगतिशील एवं सभ्य बना सकता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी सोचने की शक्ति, तर्क शक्ति, समस्या समाधान तथा बौद्धिकता, प्रतिभा तथा

रुझान, धनात्मक भावुकता, कुशलता, अच्छे मूल्यों तथा रुचियों को विकसित करता है। इन्हीं गुणों के द्वारा मनुष्य में मानवीय, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। जन्म के तुरन्त बाद से मनुष्य निरन्तर कुछ न कुछ सीखते रहता है। अतः शिक्षा निरन्तर तथा गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा और दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्योंकि शिक्षा के निश्चित उद्देश्य होते है और उद्देश्य दर्शन की सहायता से विकसित किए जाते हैं।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ

1. भारतीय भाषा के सन्दर्भ में शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्दों से मानी जाती है। एक है शिक्ष धातु तथा शाक्ष धातु। शिक्ष (शिस) का अर्थ है सीखना अथवा ज्ञान प्राप्त करना। शाक्ष (शास) का अर्थ है अनुशासन तथा नियंत्रण में रखना। अतः शिक्षा शब्द का अर्थ हुआ अनुशासित अथवा नियंत्रित अवस्था में सीखना अथवा ज्ञान प्राप्त करना।

2. **पश्चिमी भाषा के सन्दर्भ में शिक्षा का अर्थ**

पश्चिमी भाषा में Education (शिक्षा) शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के चार शब्दों से हुई है

I. **प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार** Education शब्द की उत्पत्ति Latin भाषा के Educare (एडुकेयर) से हुई है। जिसका अर्थ है पालन पोषण करना। इस दृष्टिकोण के अनुसार बच्चे का पालन-पोषण कुछ उद्देश्यों को सामने रखकर किया जाता है।

II. **दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार** Education शब्द Latin भाषा के Educere (एडुसीयर) से निकला है। जिसका अर्थ है विकसित करना अथवा निकलना। इस प्रकार Education शब्द का अर्थ हुआ बालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर निकालना अथवा विकसित करना।

III. **तीसरे दृष्टिकोण के अनुसार** Education शब्द Latin भाषा के Educatum (एडुकेटम) शब्द से निकला है। जिसका अर्थ है सीखने अथवा सिखाने की क्रिया।

IV. **चौथे दृष्टिकोण के अनुसार** Education शब्द Latin भाषा के Educo (एडुको) शब्द से निकला है। Educo शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। E और Duco । E का अर्थ है अन्दर से तथा Duco शब्द का अर्थ है आगे बढ़ाना। इस प्रकार Educo शब्द का अर्थ हुआ बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर की ओर अग्रसर करना अथवा अन्तनिर्हित शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना।

शब्द	अर्थ
Educare (एडुकेयर)	पालन पोषण करना, विकसित करना

Educere (एडुसीयर)	विकसित करना अथवा निकालना
Educatum (एडुकेटम)	पढ़ाने और सिखाने की प्रक्रिया
Educo (एडुको)	अन्तर्निहित शक्तियों का विकास

शिक्षा का संकुचित एवं व्यापक अर्थ

सम्पूर्ण प्रक्रिया के रुप में शिक्षा का प्रयोग दो रुपों में किया जाता है। एक संकुचित तथा दूसरा व्यापक अर्थ के रुप में। शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह मनुष्य के जन्म के कुछ देर बाद प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। मनुष्य कभी भी कही भी कुछ न कुछ सीखते रहता है तथा हर पल कुछ न कुछ अनुभव प्राप्त करते रहता है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ

वह शिक्षा जो स्कूल, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संचालित होती है सामान्यतः उसे संकुचित शिक्षा कहते है। **जे. एस. मैकेन्जी** के अनुसार- संकुचित दृष्टि से शिक्षा का अर्थ अपनी शक्तियों के विकास और उसके सुधार के लिए किए गये किसी भी चेतनापूर्ण प्रयासों से लिया जा सकता है।

संकुचित अर्थ में शिक्षा का अर्थ किसी भी समाज में एक निश्चित समय, निश्चित स्थान, निश्चित उद्देश्यों तथा निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर सुनियोजित ढंग से चलने वाली प्रक्रिया है। जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं उसके व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। और उसे शिक्षित, सभ्य एवं सुयोग्य नागरिक बनाया जाता है। जब शिक्षा शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में होता है जैसे शिक्षा पर सरकार इतनी धनराशि खर्च कर रही है तो इसका अभिप्राय शिक्षा के संकुचित अर्थ से ही है।

शिक्षा का व्यापक अर्थ

व्यापक अर्थ में शिक्षा निरन्तर व जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। बच्चा जब पैदा होता है उसके तुरन्त बाद से ही चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, सुनना-बोलना तथा अनेक प्रकार की अन्य क्रियाएं सीखने लगता है। फिर कुछ समय बाद उसकी नियोजित शिक्षा भी प्रारम्भ हो जाती है। व्यापक अर्थ में यह शिक्षा सम्पूर्ण जीवन निरन्तर चलने वाली सीखने-सिखाने की एक प्रक्रिया है। इस शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियॉ सभी व्यापक होते है। संकुचित शिक्षा भी व्यापक शिक्षा में सम्मिलित रहती है।

जे.एस. मैकेन्जी के अनुसार-व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवनपर्यन्त निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है। मनुष्य जन्म से मृत्युपर्यन्त अनेक वस्तुओंए व्यक्तियोंए संस्थाओंए संगठनों तथा विचारों के सम्पर्क में आते है। हम प्रत्येक समय नवीन अनुभव प्राप्त करते रहते है। इन्हीं अनुभवों व संस्कारों से हमारे व्यवहारों में परिवर्तन आता है। इन अनुभवों को प्राप्त करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है। अतः व्यापक शिक्षा जन्म से जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो प्रति पल प्राप्त अनुभवों के माध्यम से विकसित होती है।

5.4 शिक्षा की परिभाषाएं

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा की परिभाषाएं निम्नलिखित है।

ऋग्वेद के अनुसार-शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वासी तथा स्वार्थहीन बनाती है।

उपनिषद के अनुसार, शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार- शिक्षा मनुष्य में पहले से मौजूद दैवीय पूर्णता का प्रत्यक्षीकरण है।

महात्मा गॉधी के अनुसार-शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास है।

टैगोर के अनुसार-शिक्षा मनुष्य के जीवन को सारी दुनिया के अनुरुप बनाती है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा की परिभाषाएं निम्नलिखित है।

प्लेटो के अनुसार-शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करता है जिसके कि वे योग्य है।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू के अनुसार-स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण ही शिक्षा है।

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार-शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तियों का वाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है।

5.5 शिक्षा की प्रकृति

शिक्षा की प्रक्रिया के मुख्यता तीन अंग है- शिक्षक, शिक्षार्थी एवं समाज। शिक्षा में गतिशीलता का गुण पाया जाता है अतः शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा की प्रकृति को निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा समझा जा सकता है।

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है और समाज में ही विभिन्न गतिविधियों में भाग लेता है, जिससे वह विभिन्न प्रकार के अनुभव व ज्ञान प्राप्त करता है। समाज में जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सामाजिक अन्तःक्रिया होती है तो वे एक दूसरे की भाषा, विचार, आचरण व नीतियों से प्रभावित होते है। यह प्रभावित होने की प्रक्रिया ही सीखने की प्रक्रिया है। अतः बच्चा समाज में ही प्राथमिक ज्ञान व अनुभव को प्राप्त करता है। फ्रॉबेल के अनुसार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक अपनी जन्मजात शक्तियों का विकास करता हे। मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ही बच्चे के विचारों तथा व्यवहार में परिवर्तन आता है। इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है।

2. शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है- शिक्षा एक विकासोन्मुख प्रक्रिया है। यह मनुष्य में निरन्तर विकास की प्रक्रिया को जीवित रखती है। रेमण्ट के अनुसार-शिक्षा विकास का वह क्रम है जिसमें व्यक्ति के शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक की वे क्रियाएं निहित है, जिनके द्वारा वह अपने को धीरे-धीरे विभिन्न विधियों से अपने भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाता है। शिक्षा व समाज का साथ-साथ चलना आवश्यक है। जब-जब समाज में परिवर्तन होता है तब-तब शिक्षा में परिवर्तन होना आवश्यक है। इसलिए शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है।

3. शिक्षा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है- शिक्षा बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद शुरु होती है तथा यह जीवनपर्यन्त चलते रहती है। मनुष्य प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता रहता है तथा नये-नये अनुभव प्राप्त करते रहता है। व्यापक अर्थ में शिक्षा की प्रक्रिया किसी समाज में निरन्तर चलती रहती है तथा संकुचित अर्थ में यह प्रक्रिया केवल विद्यालयों में ही चलती है। अतः शिक्षा व्यापक अर्थ में ही स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है।

4. शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है- जॉन एडम्स के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया द्विधुरवीय है। यह दो ध्रुवों से होकर गुजरती है। पहला शिक्षक तथा दूसरा शिक्षार्थी। बिना शिक्षार्थी के शिक्षा की प्रक्रिया संभव नहीं है। शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य शैक्षिक अन्तःक्रिया के द्वारा ही अधिगम की प्रक्रिया संचालित होती है। जिससे शिक्षार्थी नवीन अनुभव तथा नवीन ज्ञान को प्राप्त करते रहता है।

5. शिक्षा त्रिमुखी प्रक्रिया है- जॉन डीवी के अनुसार शिक्षा एक त्रिध्रुवीय अथवा त्रिमुखी प्रक्रिया है। इसमें उन्होंने शिक्षक व शिक्षार्थी के अलावा सामाजिक तत्वों को भी शामिल किया है। सामाजिक तत्व के अर्न्तगत पाठ्यक्रम को शामिल किया गया है। इनके अनुसार तीसरा धुरव भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितने कि अन्य दो धुरव

है। शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। शिक्षक पाठ्यक्रम के माध्यम से ही शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

6. शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया है- शिक्षा एक विकासात्मक प्रक्रिया है क्योकि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य व समाज का निरन्तर विकास होता रहता हे। पेस्टॉलॉजी के अनुसार-शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविकए समरुप एवं प्रगतिशील विकास है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की प्रकृति विकासशील है। शिक्षा मनुष्य को नये ज्ञान व नये-नये तथ्यों से अवगत कराती है। रुसो के अनुसार- शिक्षा अन्दर के विकास को कहते है न कि बाहर के विकास को।श् इस प्रकार हम कह सकते है कि शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया है।

7. शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है- शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। किसी भी प्रकार की शिक्षा का आयोजन निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा शिक्षा के द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्य समाज द्वारा निश्चित होते है और समाज ही इसे विकासोन्मुख बनाता है तथा शिक्षा भी समाज को विकासोन्मुख बनाती है।

अतः शिक्षा के स्वरुप का निर्धारण उस समाज के विकास के स्तर, धर्म-दर्शन, उसकी संरचना, संस्कृति, अर्थतंत्र, शासनतंत्र, वैज्ञानिक प्रगति आदि के द्वारा होता है। जिस समाज का जैसा स्वरुप होता है शिक्षा के उद्देश्य भी उसी के आधार पर निर्धारित होते है। समाज में शिक्षा की प्रक्रिया विभिन्न रुपों में संचालित होती है। शिक्षा का कार्य ऐसे मनुष्यों का निर्माण करना है जो समन्वित रुप में समाज का विकास कर सके। जिससे व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सकें।

5.6 शिक्षा का क्षेत्र

वर्तमान समय में शिक्षाशास्त्र एक स्वतंत्र अनुशासन के रुप में स्थापित हो चुका है। इसके अर्न्तगत शिक्षा प्रक्रिया के स्वरुप और उसके विभिन्न अंगों तथा समस्याओं का दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है। अतः शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत निम्नलिखित विषय सम्मिलित रहते है।

1. शिक्षा दर्शन- शिक्षा दर्शन के अर्न्तगत शिक्षा के स्वरुप, उद्देश्य पाठ्यक्रम आदि का वर्णन किया जाता है। शिक्षा दर्शन के अर्न्तगत शिक्षा का स्वरुप, शिक्षा की आवश्यकता, शिक्षा की उपयोगिता, शिक्षा के प्रयोजन, शिक्षा दर्शन का सम्बन्ध, दर्शन का शिक्षा पर प्रभाव तथा शैक्षिक मूल्यों का विस्तृत वर्णन किया जाता है।

2. शैक्षिक समाजशास्त्र- शिक्षा और समाज का अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य समाज में ही पैदा होता है तथा वही पर अनुभव प्राप्त करता है तथा अपना विकास करता है। इस क्षेत्र के अर्न्तगत सामाजिक आधारों का वर्णन

किया जाता है। इसके अर्त्तगत मुख्य रुप से समाज का स्वरुप, संस्कृति व शिक्षा का सम्बन्ध, सामाजिक अन्तःक्रिया, विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियां, सामाजीकरण की प्रक्रिया तथा सामाजीकरण के तत्वों का विश्लेषण किया जाता है।

3. शिक्षा मनोविज्ञान- मनोविज्ञान ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया है। इसके अर्न्तगत मनुष्य का व्यक्तित्वए वंशानक्रम का प्रभावए वातावरण का प्रभाव, संवेग, बुद्धि तथा अधिगम की विधियों का वर्णन किया जाता है। इसके अर्न्तगत शिक्षा तथा मनोविज्ञान के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसके आधार पर उन विधियों का अध्ययन है जिनके द्वारा शैक्षिक समस्याओं का समाधान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जाता है।

4. शिक्षा का इतिहास- शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत शिक्षा के इतिहास का अध्ययन किया जाता है क्योंकि वर्तमान का निर्माण अतीत की उपलब्धिओं के आधार पर ही संभव है। शिक्षा का भी अपना इतिहास होता है। इसके अर्न्तगत हम आदिकाल से अब तक की शिक्षा प्रक्रिया, शिक्षा के स्वरुप, शिक्षा की व्यवस्था आदि का अध्ययन करते है। इन सब के अध्ययन से वर्तमान को समझने में सहायता मिलती है तथा वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान में सहायता प्राप्त होती है।

5. शैक्षिक समस्याएं- शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता हैं। इसके अर्न्तगत शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान शिक्षा की समस्याओं पर विचार किया जाता है और इन समस्याओं के समाधान का प्रयास भी किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी कई समस्याएं विद्यमान रहती है, जिनके समाधान के बिना शिक्षा की गुणवत्ता व शिक्षा का समुचित प्रसार संभव नहीं है। इसके अर्न्तगत विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर शिक्षा की व्यवस्था, भाषा का माध्यम, अपव्यय व अवरोधन के कारण, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा, नैतिक मूल्यों का पतन, जनसंख्या शिक्षा तथा शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

6. तुलनात्मक शिक्षा- शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का अध्ययन किया जाता है तथा उनके विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार अनेक देशों की शिक्षा पद्यति की जानकारी प्राप्त कर उनके द्वारा किये गये विकास तथा उनके द्वारा प्राप्त नवीन ज्ञान को अपनाने का प्रयास किया जाता है। विकसित देशों में शिक्षा का स्तर ऊँचा होता है तथा अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में शिक्षा का स्तर निम्न होता है। विभिन्न देशों के शैक्षिक मॉडल को कैसे देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाय यह सब तुलनात्मक अध्ययन के अर्न्तगत आता है।

7. शैक्षिक प्रशासन- शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत शैक्षिक प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध किन-किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए इसका अध्ययन इस क्षेत्र के अर्न्तगत किया जाता है। इसके अर्न्तगत विद्यालय संगठन, विद्यालय भवन समय सारणी, पाठ्यक्रम, प्रधानाचार्य, शिक्षक

तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्तियॉ, सुविधाएं, बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा, मूल्यांकन, निर्देशन, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण आदि विषय आते है।

8. शिक्षण विधियां- शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत शिक्षण विधियों का अध्ययन भी किया जाता है। इसके अर्न्तगत विभिन्न विषयों के अध्यापन के सिद्वान्तों का अध्ययन करते है क्योंकि प्रत्येक विषय की शिक्षण विधि अलग-अलग निश्चित होती है। इसके अर्न्तगत विषय का स्वरुप, पाठ्यचर्चा, घटक, विधियां तथा उद्देश्यों का अध्ययन कर शिक्षण प्रक्रिया में समुचित शिक्षण विधियों के विकास पर बल दिया जाता है।

अतः शिक्षा की प्रक्रिया समाज के विभिन्न क्षेत्रों के सहयोग से संचालित होती है। शिक्षा की प्रक्रिया को सुचारु रुप से संचालित करने के लिए कई पक्षों का अध्ययन करना भी आवश्यक होता है। जिस कारण शिक्षा व्यक्ति व समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हो तथा शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को भी प्राप्त किया जा सके। शिक्षा के क्षेत्र के अर्न्तगत मुख्य रुप से शिक्षा दर्शन, शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा का इतिहास, शैक्षिक समस्याए, तुलनात्मक शिक्षा, शैक्षिक प्रशासन, शिक्षण विधियां सहित आदि क्षेत्र आते है।

5.7 शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा का उद्देश्य बहुआयामी है और यह केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा समाज की उन्नति से जुड़ा हुआ है। शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति को बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, भावनात्मक और व्यावहारिक रूप से सक्षम बनाना है। नीचे शिक्षा के उद्देश्यों को बिंदुवार स्पष्ट किया जा रहा है:

1. **बौद्धिक विकास:** शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की बुद्धि का विकास करना है। यह उसे तार्किक चिंतन, विश्लेषणात्मक दृष्टि और समस्याओं के समाधान की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने और आलोचनात्मक सोच विकसित करने में सहायक होती है।
2. **नैतिक विकास:** शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को नैतिक मूल्यों से जोड़ना है। सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, अनुशासन और सहयोग जैसे मूल्य शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के जीवन में स्थापित होते हैं। यह उसे अच्छे और बुरे में अंतर करने की क्षमता देती है।
3. **सामाजिक विकास:** शिक्षा व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ती है। यह उसे सामाजिक नियमों, परंपराओं और संस्कृति की समझ प्रदान करती है। शिक्षा सामाजिक समानता, न्याय और भाईचारे की भावना को प्रबल करती है। इसके माध्यम से व्यक्ति जिम्मेदार नागरिक बनता है।

4. **भावनात्मक विकास:** शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष को संतुलित करना है। यह उसे आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान और आत्म-नियंत्रण की भावना देती है। शिक्षा व्यक्ति को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है।

5. **व्यावहारिक जीवन की तैयारी:** शिक्षा व्यक्ति को रोजगारोन्मुखी कौशल और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है। यह उसे आत्मनिर्भर बनने की दिशा में प्रेरित करती है। व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण व्यक्ति को समाज में आर्थिक रूप से सक्षम बनाते हैं।

6. **सांस्कृतिक संरक्षण और परिवर्तन:** शिक्षा का उद्देश्य समाज की परंपराओं और संस्कृति को आगे बढ़ाना है। साथ ही यह समय के अनुसार आवश्यक परिवर्तन लाने में भी सहायक होती है। शिक्षा सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखते हुए समाज को प्रगतिशील बनाती है।

7. **राष्ट्रीय विकास:** शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्ति और समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राष्ट्र की प्रगति से भी जुड़ा है। शिक्षित नागरिक राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उन्नति में योगदान देते हैं। शिक्षा राष्ट्र को आत्मनिर्भर और सशक्त बनाती है।

8. **आजीवन शिक्षा:** आधुनिक युग में शिक्षा का उद्देश्य आजीवन शिक्षा की अवधारणा से जुड़ा है। इसका अर्थ है कि शिक्षा केवल विद्यालय या विश्वविद्यालय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति निरंतर अनुभवों और ज्ञान के आदान-प्रदान से सीखता रहता है।

9. **मानवता की सेवा:** शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मानवता की सेवा करना है। यह व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है और उसे दूसरों की सहायता करने के लिए प्रेरित करती है। शिक्षा का लक्ष्य एक न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण और मानवीय समाज का निर्माण करना है।

5.8 शिक्षा के प्रकार

1. औपचारिक शिक्षा

औपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो नियोजित, संगठित और संस्थागत ढाँचे के अंतर्गत दी जाती है। यह शिक्षा मुख्यतः विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रदान की जाती है, जहाँ निश्चित पाठ्यक्रम, समय-सारणी, परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन की व्यवस्था होती है। औपचारिक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को व्यवस्थित ज्ञान, कौशल और मूल्य प्रदान करना है ताकि वे समाज में जिम्मेदार नागरिक बन सकें। इसमें शिक्षक और विद्यार्थी के बीच औपचारिक संबंध स्थापित होता है तथा शिक्षण प्रक्रिया पूर्व निर्धारित नियमों और मानकों

के अनुसार संचालित होती है। औपचारिक शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह व्यक्ति को क्रमबद्ध और अनुशासित ढंग से सीखने का अवसर देती है। उदाहरणस्वरूप, गणित, विज्ञान, भाषा, इतिहास और समाजशास्त्र जैसे विषयों का अध्ययन औपचारिक शिक्षा के अंतर्गत किया जाता है। इसके अतिरिक्त, औपचारिक शिक्षा में सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ भी सम्मिलित होती हैं, जो विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में सहायक होती हैं। यह शिक्षा व्यक्ति को न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम बनाती है, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों की समझ भी प्रदान करती है। औपचारिक शिक्षा का महत्व इस बात में निहित है कि यह समाज में समानता, अवसर और प्रगति को सुनिश्चित करती है। आधुनिक युग में औपचारिक शिक्षा को जीवन की सफलता और सामाजिक उन्नति का आधार माना जाता है। इस प्रकार, औपचारिक शिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आवश्यक है क्योंकि यह ज्ञान, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करती है।

2. अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो किसी संस्थागत ढाँचे या निर्धारित पाठ्यक्रम के अंतर्गत नहीं दी जाती, बल्कि जीवन के अनुभवों, सामाजिक परिवेश और दैनिक क्रियाकलापों के माध्यम से प्राप्त होती है। यह शिक्षा स्वाभाविक रूप से परिवार, मित्र, पड़ोस, कार्यस्थल और समाज से मिलती है। उदाहरणस्वरूप, माता-पिता द्वारा बच्चों को संस्कार सिखाना, बुजुर्गों से जीवन के अनुभव सुनना, या किसी कार्य को देखकर सीखना अनौपचारिक शिक्षा के अंतर्गत आता है। इसमें समय, स्थान और विषय की कोई निश्चित सीमा नहीं होती, बल्कि यह निरंतर और सहज रूप से चलती रहती है। अनौपचारिक शिक्षा का महत्व इस बात में है कि यह व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान, सामाजिक मूल्य और जीवन कौशल प्रदान करती है। यह शिक्षा व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुसार ढलना सिखाती है और उसे समाज में बेहतर ढंग से जीने योग्य बनाती है। औपचारिक शिक्षा की तरह इसमें परीक्षा या अंक प्रणाली नहीं होती, बल्कि सीखने की प्रक्रिया अनुभवजन्य होती है। आधुनिक समाज में अनौपचारिक शिक्षा का योगदान अत्यधिक है क्योंकि यह व्यक्ति को वास्तविक जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करती है। उदाहरण के तौर पर, किसी किसान का खेती के तरीकों को अपने बच्चों को सिखाना, या किसी कारीगर का अपने शिल्प को शिष्य को सिखाना, अनौपचारिक शिक्षा के ही रूप हैं। इस प्रकार, अनौपचारिक शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास, सामाजिक सामंजस्य और सांस्कृतिक संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह शिक्षा जीवन के हर चरण में निरंतर चलती रहती है और व्यक्ति को व्यवहारिक रूप से सक्षम बनाती है।

3. गैर-औपचारिक शिक्षा

गैर-औपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था से बाहर दी जाती है, परंतु यह नियोजित और संगठित रूप में होती है। इसका उद्देश्य उन व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करना है जो किसी कारणवश

औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते या जिन्हें अतिरिक्त ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। गैर-औपचारिक शिक्षा में लचीलापन होता है; इसमें समय, स्थान और पाठ्यक्रम को शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, वयस्क शिक्षा कार्यक्रम, साक्षरता अभियान, व्यावसायिक प्रशिक्षण, पत्राचार शिक्षा, रेडियो और टेलीविजन आधारित शिक्षा, तथा विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम गैर-औपचारिक शिक्षा के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार की शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह समाज के उन वर्गों तक पहुँचती है जो औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जैसे ग्रामीण क्षेत्र के लोग, महिलाएँ, श्रमिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग। गैर-औपचारिक शिक्षा व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान और कौशल प्रदान करती है, जिससे वह अपने जीवन स्तर को सुधार सके और समाज में सक्रिय भूमिका निभा सके। यह शिक्षा समाज में साक्षरता दर बढ़ाने, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने और सामाजिक समानता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। आधुनिक युग में गैर-औपचारिक शिक्षा को आजीवन शिक्षा की अवधारणा से जोड़ा जाता है, क्योंकि यह व्यक्ति को निरंतर सीखने और बदलते परिवेश के अनुरूप ढलने का अवसर देती है। इस प्रकार, गैर-औपचारिक शिक्षा औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच सेतु का कार्य करती है और समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है।

5.9 शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में पैदा होता है, समाज में रहता है और केवल समाज में ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। रॉस के अनुसार- सामाजिक वातावरण के बिना वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं और व्यक्त्वि का कोई अर्थ नहीं। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग होता है। उसका समाजीकरण भी परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों, पड़ोसियों तथा मित्रों के सम्पर्क में आने पर ही होता है। इन्हीं सम्बन्धों के द्वारा वह समाज में अनुकूल व्यवहार करने और लोगों से बातचीत करने की विधि सीखता है। इन सम्बन्धों से ही वह अपनी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। शिक्षा को चाहिए कि वह मनुष्य को समाज का उपयोगी व योग्य सदस्य बनने की योग्यता का विकास करें। अतः शिक्षा सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक घटनाओं, सामाजिक नियमों और सामाजिक व्यवहार का अध्ययन व विश्लेषण है।

शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ है शिक्षा का सामाजिक संस्थाओं के सन्दर्भ में अपने उद्देश्य निर्धारित करना, पाठ्यचर्चा का निर्माण करना, शिक्षण विधियों का विकास एवं प्रयोग तथा अनुशासन आदि स्थापित करना है। शिक्षा व्यक्ति को समाज में रहने की योग्यता तथा क्षमता का विकास करने में सहायता प्रदान करती है। अतः शिक्षा का सामाजिक अन्तःक्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक समूहों, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये सम्बन्ध ही शिक्षा के सामाजिक आधार है। शिक्षा इन

कारकों से प्रभावित होती है तथा इन्हें प्रभावित करती है। जॉन डीवी, डोलाड, दुर्खीम, मैक्स बेबर, ओटावे तथा कार्ल मानहेम शिक्षा के सामाजिक आधार के प्रमुख समर्थक है।

समाज में कोई भी दो व्यक्ति एक समान नहीं हो सकते है। दोनों में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। इसी आधार पर मनुष्य के सीखने के तरीके भी अलग-अलग होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में ही उसका विकास होता है तथा वह सामाजिक रीति-रिवाजों को सीखता है। समाज में मनुष्य मुख्यतया दो प्रकार से सीखता है प्रथम विभिन्न वस्तुओं के परोक्ष अनुभव द्वारा द्वितीय विभिन्न साधनों, रीति-रिवाजों, पुस्तकों तथा अन्य व्यक्तियों के अनुभवों द्वारा। शिक्षा समाज की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। शिक्षा समाज की शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर समाज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। शिक्षा और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक के रुप में कार्य करते है। समाज में परिवर्तनशीलता का गुण पाया जाता है। इसी गुण के कारण समाज में गतिशीलता पाई जाती है। समय, काल व परिस्थितियों के अनुसार समाज का स्वरुप भी बदलता रहता है। इस परिवर्तन का प्रभाव प्रत्येक समाज के नागरिकों के जीवन-शैली, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूशा, रीति-रिवाज, धर्म-दर्शन आदि पर अवश्य पड़ता है। इससे समाज में निरन्तर विकास होता है।

5.10 शिक्षा पर समाजशास्त्रीय आधार का प्रभाव

संसार के सभी समाजों में समाज, राज्य, तथा राष्ट्र में अपने शिक्षा के स्वरुप के निर्धारण में शिक्षा सहायक होती है। विभिन्न समाजों जैसे लोकतंत्रीय, साम्यवाद में भिन्न-भिन्न रुपों में इसे अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते है। हमारे देश में लोकतंत्रीय समाजवादी सामाजिक व्यवस्था है, इसलिए हम मुख्य रुप से इसके आधार पर अपनी शिक्षा का निर्माण करते है। समाजशास्त्रियों ने स्पष्ट किया है कि समाज की प्रकृति परिवर्तनशील है। समय के अनुसार उसके स्वरुप में परिवर्तन होता रहता है। और उसकी आवश्यकताओं में भी परिवर्तन होता रहता है। किसी भी समाज के उद्देश्य निश्चित नहीं होते है। ये उद्देश्य समाज में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर निश्चित होते है। किसी भी समाज की कुछ सार्वकालिक और सार्वभौमिक आवश्यकताएं होती है। जैसे शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास, सांस्कृतिक विकास और नैतिक व चारित्रिक विकास। अतः किसी समाज व राष्ट्र के शिक्षा के उद्देश्य इन आवश्यकताओं के विकास में व्यक्ति की सहायता करने वाले होने चाहिए। जिससे वे इन गुणों के विकास करने में सक्षम हो तथा व्यक्ति तथा समाज के विकास में अपना योगदान प्रस्तुत कर सके। शिक्षा की पाठ्यचर्चा किसी भी समाज के उद्देश्यों को प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन होते है। शिक्षा में समाजशास्त्रीय आधार का प्रभाव अवश्य पड़ता है। क्योंकि विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में समाज की समस्याओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले विषयों एवं क्रियाओं पर विशेष बल दिया जाता है। वर्तमान समय में पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों एवं क्रियाओं पर जोर दिया जाने लगा है जिनका सम्बन्ध बच्चों के तात्कालिक एवं व्यावहारिक जीवन से सीधा

सम्बन्ध हो। शिक्षा प्रक्रिया में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रयोग से शिक्षण विधियों के रुप में भी काफी परिवर्तन हुए है। समाजशास्त्रियों के अनुसार बालक समाज की सामाजिक क्रियाओं में प्रतिभाग कर स्वयं अनुभव व ज्ञान अर्जित करता है। वर्तमान समय में शिक्षण प्रक्रिया में बच्चे की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया जाता हैं।

शिक्षा में अनुशासन के क्षेत्र को भी समाजशास्त्रीय आधारों ने प्रभावित किया है। समाजशास्त्रियों के अनुसार अनुशासन को बच्चों में थोपा नहीं जाना चाहिए, यह तो बच्चे की आन्तरिक शक्ति है। इस आन्तरिक शक्ति का विकास बच्चों में समाज की सामूहिक क्रियाओं में भाग लेकर स्वाभाविक रुप से होता है। समाजशास्त्रियों के अनुसार व्यक्ति और समाज में अटूट सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। शैक्षिक प्रक्रिया में भी बच्चे तथा शिक्षक को समान महत्व दिया जाना चाहिए। शिक्षा समाजशास्त्रियों के अनुसार विद्यालय समाज का लघु रुप है, तथा यह एक सामाजिक संस्था है। अतः विद्यालयों का वातावरण भी समाज की वास्तविकता के आधार पर निर्मित होना चाहिए। जहॉ पर बच्चे जीवन की वास्तविक क्रियाओं में भाग लेकर वास्तविक जीवन जीने की कला के विकास में सक्षम हो।

5.11 सारांश

शिक्षा मानव जीवन का मूल आधार है। यह केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का साधन है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक रूप से सक्षम बनता है। यह समाज में समानता, सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करती है। शिक्षा के तीन प्रमुख रूप हैं – औपचारिक, अनौपचारिक और गैर-औपचारिक। औपचारिक शिक्षा विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संगठित रूप से दी जाती है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा परिवार, समाज और अनुभवों से प्राप्त होती है। गैर-औपचारिक शिक्षा उन लोगों के लिए है जो औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जैसे वयस्क शिक्षा या व्यावसायिक प्रशिक्षण। शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार यह है कि यह समाज की आवश्यकताओं, परंपराओं और मूल्यों को आगे बढ़ाती है तथा सामाजिक परिवर्तन का साधन बनती है। आधुनिक युग में शिक्षा को आजीवन प्रक्रिया माना जाता है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिए अनिवार्य है।

अतः निष्कर्ष रुप से यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में किसी भी राष्ट्र व समाज की शिक्षा समाजशास्त्रीय आधारों से अवश्य प्रभावित होती हैं। अन्तर इतना है कि यह प्रभाव भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रुप में होती है।

5.12 पारिभाषिक शब्दावली

शिक्षा: ज्ञान, कौशल और मूल्य प्रदान करने की प्रक्रिया होती है।

औपचारिक शिक्षा: विद्यालय आधारित शिक्षा होती है।

अनौपचारिक शिक्षा: अनुभवजन्य शिक्षा होती है।

समाजशास्त्रीय आधार: से तात्पर्य है शिक्षा और समाज के बीच संबंध।

5.13 संदर्भ ग्रंथ

- पाण्डे, (डॉ) रा. श. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगराः अग्रवाल प्रकाशन
- सक्सेना, (डॉ) स. शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार. आगराः साहित्य प्रकाशन
- मित्तल, एम.एल. (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, मेरठः इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस
- शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). शैक्षिक समाजशास्त्र, नई दिल्लीः एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
- सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय. नई दिल्लीः रजत प्रकाशन
- गुप्त, रा. बा. (1996). भारतीय शिक्षा शास्त्र. आगराः रतन प्रकाशन मंदिर

5.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा से आप क्या समझते हैं। शिक्षा की विभिन्न परिभाषाओं को लिखिए।
2. शिक्षा के अध्ययन क्षेत्र को विस्तार से समझाइये।
3. शिक्षा के उद्देश्यों को विस्तार से समझाइये।

ईकाई- 06 **धर्म**

Religion

ईकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 धर्म का अर्थ एवं परिभाषा

6.3 विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा धर्म की व्याख्या

6.4 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

6.4.1 आत्मवादी सिद्धांत

6.4.2 मानावाद सिद्धांत

6.4.3 प्रकृतिवादी सिद्धांत

6.4.4 टोटमवादी सिद्धांत

6.5 धर्म के प्रकार्य

6.6 धर्म की विशेषताएँ

6.7 धर्म की उपयोगिता

6.8 पारिभाषिक शब्दावली

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 सारांश

6.11 निबंधनात्मक प्रश्न

6.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 प्रस्तावना :

धर्म आस्था एवं श्रद्धा पर आधारित विषय है| अतः धर्म की व्याख्या वैज्ञानिक रूप से नहीं हो सकती है| धर्म तथा अन्य आस्थाएं प्रत्यक्ष रूप से समाज को प्रभावित करती है | अतः समाज को समझने से पूर्व धर्म को

समझना होगा। मानव सभ्यता में धर्म का अस्तित्व सबसे स्थायी सामाजिक घटनाओं में से एक है जो समाजशास्त्रीय विश्लेषण को प्रेरित करता है। धर्म समाज में स्थिरता लाने का कार्य करता है। फिर भी इसका उपयोग घृणा फैलाने और मानवता के विरुद्ध अपराध करने के लिए भी किया गया है। यह असमानता और शोषण को उचित ठहराने का एक प्रमुख स्रोत रहा है। धर्म प्रत्येक समुदाय में एक संस्था के रूप में विद्यमान है। समाजशास्त्रियों ने धर्म द्वारा मनुष्यों को प्रदान किए जाने वाले विभिन्न अर्थों को समझने का प्रयास किया है। सामाजिक जीवन के संगठन में इसका महत्व बहुत अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोगों को जीवन के संकटों का सामना करने और उनसे निपटने में सहायता करता है। धर्म को समाजशास्त्रीय अध्ययन के रूप में अनेकों समाजशास्त्रियों ने इसकी व्याख्या की है, **एडवर्ड टायलर** के अनुसार आध्यात्मिक सत्ताओं मे विश्वास ही धर्म है, **ऑगबर्न तथा निमकॉफ** के अनुसार धर्म मानवोपरी शक्तियों के प्रति अभिवृत्तियां है जो संस्कृति को प्रभावित करता है। इस संदर्भ में एमाइल दुर्खीम धर्म को परिभाषित करते हुए कहते है की धर्म आस्था एवं परंपराओं का एकीकृत तंत्र है जो पवित्र वस्तुओं से संबंधित होता है। यह उन लोगों जो इन अवस्थाओं व परंपराओं में विश्वास रखते हैं, को एक नैतिक समुदाय एवं एक सूत्र में बांधता है।

भारत विश्व के सभी प्रमुख धर्म के लिए स्वदेश है भारत का प्रमुख धर्म हिंदू धर्म है लेकिन इस्लाम ईसाई, बौद्ध, जैन एवं सिख धर्म तथा विश्व के अन्य धर्म के अनुयाई भी यहां निवास करते हैं परंतु धर्मनिरपेक्षता के आगमन से विशेष रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था, राजतंत्र विज्ञान और संस्कृति के अभिनंदन के रूप में भारतीय धार्मिक प्रदेश में प्रमुख परिवर्तन हुए हैं वस्तुतः हमने जब शासन का धर्मनिरपेक्ष रूप अपनाया उसके बाद भारत में धर्म का अर्थ ही बदल गया। धर्म ऐसा अमूर्त तत्व है जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से अधिक महत्वपूर्ण है।

6.1 उद्देश्य:

1. धर्म के समाजशास्त्रीय अर्थ को समझना।
2. प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा धर्म की विभिन्न व्याख्याओं का अध्ययन करना।
3. धर्म और समाज के परस्पर संबंधों का विश्लेषण करना।
4. आधुनिक समाज में धर्म की भूमिका और परिवर्तन को जानना।

6.2 धर्म का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Religion):

धर्म मनुष्य के जीवन का एक अनिवार्य तत्व है धर्म की विशेषताओं, उसके आदर्शों और जीवन को संगठित करने से सम्बन्धित उसके कार्यों को देखते हुए यह स्वीकार कर लेना पड़ता है कि धर्म एक ऐसा अमूर्त तत्व है जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से भी बढ़कर महत्वपूर्ण है डेविस (Davis) के शब्दों में, "मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिकए स्थायी एवं व्यापक है कि धर्म को समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते हैं"।

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार, "सामाजिक विज्ञानों में धर्म की वास्तविकता के सन्दर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता वरन् सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है"।

धर्म को आंग्ल भाषा में 'रिलीजियन' कहा जाता है। शाब्दिक अर्थों में रिलीजियन एकता और सामंजस्य का तत्व है। **'रि'** से यह बोध होता है, कि एकता के दोनों विषय जो इस समय एक हैं, मूल रूप में एक ही थे। वे कुछ समय के लिये एक-दूसरे से पृथक हो गये थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धर्म मानव और ईश्वर, ससीम और असीम की परम एकता में आस्था पर आधारित है अतः जो धर्म मानव और ईश्वर के बीच स्थाई खाई खोदता है, परोक्ष रूप से धर्म कहलाने का अधिकार नहीं है।

मनुस्मृति में लिखा गया है कि, "वेद धर्म का मूल है"।

महाभारत में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' (धारण करना) धातु से सम्बन्धित है अर्थात् धर्म वही है जो समस्त विश्व को धारण करे। धर्म ही समाज को धारण कर सकता है तथा सामाजिक और आर्थिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

मजूमदार तथा मदन के अनुसार, "धर्म किसी अलौकिक और अतीन्द्रिय शक्ति के भय का एक मानवीय प्रत्युत्तर है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति अथवा परिस्थितियों से किये गये अनुकूलन का यह रूप है जो अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित होता है"।

पाश्चात्य विचारकों द्वारा धर्म की कतिपय मुख्य परिभाषायें निम्न प्रकार हैं।

फेयर चाइल्ड के अनुसार, "उच्च अलौकिक शक्ति या शक्तियों के विचारों एवं मानव से उनके सम्बन्धों की धारणाओं के आस-पास निर्मित सामाजिक संस्था धर्म है"। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि-

I. धर्म एक सामाजिक संस्था है।
II. धर्म में उच्च अलौकिक शक्ति के विचार निहित हैं।
III. इन उच्च अलौकिक शक्तियों से मानव के सम्बन्धों की धारणा या विचार धर्म है।

जानसन के अनुसार, "अधिक रूप में धर्म उच्च अलौकिक कम या प्राणियोंए शक्तियों, स्थानों एवं अन्य सत्वों (Entities) के सम्बन्ध में विश्वासों एवं व्यवहारों की एक स्थिर प्रणाली है"। इस परिभाषा से निम्न बातें स्पष्ट होती है-

I. धर्म ईश्वर या ईश्वरों के सम्बन्धों में विश्वासों एवं व्यवहारों की एक प्रणाली है।

II. उच्च अलौकिक प्राणियों से तात्पर्य ईश्वरए ईश्वरों या देवताओं से है।

III. उच्च अलौकिक शक्ति से तात्पर्य पवित्र भावनाओं या आत्माओं से है। य जादुई शक्ति से भी है।

IV. स्थानों से तात्पर्य स्वर्ग नरक आदि है।

दुर्खीम के अनुसार, "धर्म, पवित्र वस्तुओं के सम्बन्ध में विश्वासों एवं व्यवहारों की समग्र प्रणाली है"। इस प्रकार दुखम के अनुसार धर्म का सम्बन्ध पवित्र वस्तुओं से है।

एडवर्ड सपिर (Edward Sapir) के अनुसार, "धर्म नित्य के जीवन की कई समस्याओं एवं विपत्तियों के मध्य मानसिक शान्ति के मार्ग की खोज का सतत् प्रयत्न है"। इस प्रकार एडवर्ड सपिर ने मानसिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा धैर्य बँधाने वाले पक्ष पर अधिक बल दिया है।

जेम्स जी० फ्रेजर के अनुसार, "धर्म मानव से उच्च शक्तियों, जो मानव एवं प्रकृति के कार्यों को निर्देशित एवं नियन्त्रित करती है, में विश्वास है"।

डावसन के अनुसार, "जब कभी और जहाँ कहीं भी मनुष्य में वाह्य शक्तियों पर निर्भरता के उत्पन्न होते हैं, जो रहस्य के समान गुप्त रहती है तथा जो स्वयं मनुष्य से उच्च है, वही धर्म होता है भय की तथा स्वयं को नीचे गिराने की भावनाए जिसमें मनुष्य उन शक्तियों की उपस्थिति में भरा रहता है, वह आवश्यक रूप से धार्मिक संवेग है, पूजा व प्रार्थना का पथ है"।

6.3 विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा धर्म की व्याख्या

धर्म मानव समाज का एक अत्यंत प्राचीन और महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थान है। मानव सभ्यता के आरंभिक काल से लेकर वर्तमान युग तक धर्म ने सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक संरचना, राजनीतिक व्यवस्था तथा नैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। धर्म केवल पूजा-पाठ या ईश्वर-विश्वास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन की मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं से उत्पन्न एक व्यापक सामाजिक संस्था है।

समाजशास्त्र धर्म को दार्शनिक या आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं समझता। समाजशास्त्र का उद्देश्य धर्म को एक सामाजिक तथ्य के रूप में देखना, उसकी उत्पत्ति, स्वरूप, कार्य व सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना है। इस दृष्टिकोण में धर्म को किसी अलौकिक सत्य के रूप में नहीं माना जाता, बल्कि मानव समाज की वास्तविक परिस्थितियों, अनुभवों और सामाजिक संरचना के संदर्भ में विश्लेषित किया जाता है।

विभिन्न समाजशास्त्रियों—दुर्खीम, वेबर, मार्क्स, फ्रायड, मैलिनोव्स्की, कॉम्ट, रैडक्लिफ-ब्राउन आदि—ने धर्म का अध्ययन अपने-अपने विशिष्ट ढंग से किया है। इन सभी की व्याख्याएँ धर्म के विभिन्न आयामों को उजागर करती हैं—कहीं धर्म को सामाजिक एकता का माध्यम बताया गया, कहीं सामाजिक परिवर्तन का स्रोत, कहीं दमन का उपकरण, तो कहीं मानव भय और असुरक्षा की अभिव्यक्ति।

i. एमिल दुर्खीम (Émile Durkheim) के अनुसार धर्म की सामाजिक व्याख्या

दुर्खीम धर्म का सबसे बड़ा वैज्ञानिक विश्लेषक माना जाता है। उसने धर्म को समाज की सामूहिक चेतना का प्रतीक बताया। उसके अनुसार धर्म "सामाजिक तथ्य" है और इसे समझने के लिए हमें समाज की सामूहिक भावनाओं और रीति-रिवाजों को देखना चाहिए। दुर्खीम की प्रसिद्ध कृति The Elementary Forms of Religious Life में धर्म को पवित्र (Sacred) और अपवित्र (Profane) वस्तुओं के विभाजन के रूप में परिभाषित किया गया है। धर्म उन विश्वासों और प्रथाओं का समूह है जिन्हें समाज पवित्र मानता है। दुर्खीम ने टोटेमवाद का अध्ययन करते हुए कहा कि टोटेम (पशु/वस्तु) वास्तव में समाज का प्रतीक होता है। लोग टोटेम की पूजा करके वास्तव में समाज की एकता, शक्ति और सामूहिकता की पूजा करते हैं। इससे पता चलता है कि धर्म सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। धर्म की सामाजिक एकता के संदर्भ में धर्म का मुख्य कार्य सामाजिक एकजुटता (Social Solidarity) को बढ़ाना है।

iii. मैक्स वेबर (Max Weber) के अनुसार धर्म की सामाजिक व्याख्या

वेबर ने धर्म को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारक माना। उसने धर्म को नैतिक मूल्यों, सामाजिक क्रियाओं और आर्थिक गतिविधियों से जोड़ा। 1. धर्म और अर्थव्यवस्था—Protestant Ethic Thesis वेबर की प्रसिद्ध रचना "The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism" में बताया गया कि प्रोटेस्टेंट ईसाई नैतिकता ने पूँजीवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेष रूप से "Calvinism" के सिद्धांत— कठोर परिश्रम, अनुशासन, मितव्ययिता, समय का सदुपयोग ने पूँजीवादी मानसिकता को बढ़ावा दिया। वेबर के अनुसार धार्मिक विश्वास मानव क्रिया को अर्थ प्रदान करते हैं।

iii. कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के अनुसार धर्म की सामाजिक व्याख्या

मार्क्स धर्म को वर्ग-समाज का उत्पाद और राजनीतिक-आर्थिक शोषण को छुपाने का साधन मानता है। मार्क्स ने कहा: "Religion is the opium of the people." धर्म गरीबों और शोषित वर्ग को झूठी सांत्वना देता है कि उनका दुःख ईश्वर की इच्छा है। मार्क्स के अनुसार धर्म समाज की आर्थिक संरचना (बुनियादी ढाँचा) का

प्रतिबिंब है। जो वर्ग सत्ता में होता है, वही धार्मिक विश्वासों को नियंत्रित करता है। मार्क्स ने कहा कि धर्म सामाजिक असमानताओं को वैधता प्रदान करता है।

iv. सिग्मंड फ्रायड (Sigmund Freud) और धर्म का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

फ्रायड के अनुसार धर्म मनुष्य की गहरी दबी हुई इच्छाओं, भय और असुरक्षाओं का परिणाम है। फ्रायड ने धर्म को मनोवैज्ञानिक रोग-सा बताया। मनुष्य डर के कारण "पिता-रूप ईश्वर" की कल्पना करता है। धार्मिक भावनाएँ अवचेतन मन का परिणाम हैं। मृत्यु, बीमारी और प्राकृतिक आपदाओं के भय से धर्म का विकास हुआ। धार्मिक नियम समाज द्वारा व्यक्ति की इच्छाओं को नियंत्रित करने का साधन हैं।

v. ब्रॉन्सलॉ मैलिनोव्स्की (Malinowski) के अनुसार धर्म की सामाजिक व्याख्या

ब्रॉन्सलॉ मैलिनोव्स्की (1884-1942) आधुनिक समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र के सबसे प्रभावशाली कार्यात्मकवादी चिंतकों में से एक हैं। इन्होंने धर्म को एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक.संस्थान तथा मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली व्यवस्था के रूप में समझाया। मैलिनोव्स्की का मत है कि धर्म का मूल उद्देश्य व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षाए संकट.निवारण और सामाजिक एकता प्रदान करना है। उनके अनुसार धर्म केवल ईश्वर.विश्वास या चमत्कारों की प्रणाली नहीं हैए बल्कि यह मानव जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं, अनिश्चितताओं और संकटों का समाधान प्रदान करता है। धर्म जीवन को अर्थपूर्ण बनाता है और भावनात्मक संतुलन बनाए रखता है।

vi. रैडक्लिफ-ब्राउन के अनुसार धर्म की सामाजिक व्याख्या

रैडक्लिफ-ब्राउन (1881–1955) ब्रिटिश सामाजिक मानवशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतकार थे। उन्होंने संरचनात्मक-कार्यात्मकवाद (Structural Functionalism) को विकसित किया। धर्म को वे किसी व्यक्तिगत भय, जादुई विश्वास या मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने वाली संस्था के रूप में देखते हैं। ब्राउन के अनुसार— "धर्म एक सामाजिक तथ्य है, जिसका उद्देश्य सामाजिक संबंधों की निरंतरता और सामूहिक जीवन को नियमित करना है।"

6.4 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

धर्म मानव समाज की सबसे पुरानी और जटिल संस्थाओं में से एक है। अलग-अलग समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों और दार्शनिकों ने इसके उद्भव को समझाने के लिए कई सिद्धांत दिए हैं। धर्म की उत्पत्ति को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, जैविक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन किया जाता है। जिसमे इसकी उत्पत्ति को समझनें के लिए निम्नलिखित प्रमुख सिद्धांतों को समझाने का प्रयास किया गया हैं।

6.4.1 धर्म की उत्पत्ति का आत्मवादी सिद्धांत (Animistic Theory of Religion's Origin)

धर्म की उत्पत्ति के **आत्मवादी सिद्धांत के प्रवर्तक एडवर्ड बी टॉयलर** थे उनका मत है की प्रकृति की सभी वस्तुओं में जीव अथवा आत्मा निवास करती है। इस सिद्धांत के अनुसार धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक प्रकार का पता आत्मवादी विश्वासों तथा क्रियाओं द्वारा लगाया जा सकता है तथा इसमें तीन बातों – (अ) आत्मा का विचार ,(ब) आत्मा की पूजा एवं प्रेतात्मा मे परिवर्तन (स) पूजा का धर्म में परिवर्तन ,पर बाल दिया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार आत्मा का सर्वप्रथम विचार मनुष्य मे दोहरे जीवन की कल्पना के कारण आया- एक वह जीवन जब व्यक्ति जाग रहा होता है तथा दूसरा वह जिसमे वह सो रहा होता है। शरीर आत्मा तथा स्वतंत्र आत्मा की धारणाओं से पितृों की पूजा शुरू हुई जिसने आगे चलकर धर्म का रूप धारण कर लिया।

6.4.2 धर्म की उत्पत्ति का मानावाद का सिद्धांत (Mananism Theory of Religion's Origin)

मानावाद या मानववादी दृष्टिकोण के अनुसार धर्म की उत्पत्ति मनुष्य की अपनी सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक आवश्यकताओं से हुई है। इस सिद्धांत में धर्म किसी अलौकिक शक्ति का बनाया हुआ तंत्र नहीं है, बल्कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए बनाया गया एक सामाजिक व सांस्कृतिक निर्माण है। मानावाद न तो किसी अलौकिक शक्ति का वरदान है, और न ही केवल 'आत्मा-विश्वास' का परिणाम। बल्कि यह मनुष्य द्वारा मनुष्य के जीवन को अर्थपूर्ण, संगठित, सुरक्षित और संतुलित बनाने के प्रयास का परिणाम है। मैरिट(Marett) ने आत्मा की निर्वैयक्तिक अवधारणा के प्रति विश्वासों को मानावाद कहा है। इसी शक्ति पर विश्वास के आधार पर धर्म की उत्पत्ति हुई।

6.3.3 धर्म की उत्पत्ति का प्रकृतिवादी सिद्धांत (Naturalism Theory of Religion's Origin)

प्रकृतिवादी सिद्धांत धर्म की उत्पत्ति धर्म से बताता है । **मैक्स मूलर इस सिद्धांत के प्रतिपादक माने जाते है।** इनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक शक्तियों के भय के कारण हुई है। इनके अनुसार आंधी, तूफान ,भूकंप, सूर्य, चाँद, सितारे आदि को देखकर आदिम मानव के मस्तिष्क में भय उत्पन्न हो गया। वह आश्चर्यचकित उन्हें देखता था तथा निरन्तर प्रभावित होने के कारण वह उनसे डरने लगा, जिसके परिणामस्वरूप उसके मन मे श्रद्धा-भक्ति के भाव उत्पन्न हुए जिससे उसने प्रकृति की पूजा करनाई शुरू कर दी, जिससे धर्म की उत्पत्ति हुई।

6.3.4 धर्म की उत्पत्ति का टोटमवादी सिद्धांत (Totemism Theory of Religion's Origin)

इस सिद्धांत के प्रतिपादक दुर्खीम है। दुर्खीम ने 'टोटम' (Totem) को एक प्रारंभिक धर्म माना है तथा धर्म की उत्तपत्ति 'टोटमवाद' के आधार पर देने का प्रत्यन किया है। दुर्खीम के अनुसार धार्मिक विचार एवं क्रियाएं समूह के प्रतीक है तथा विशिष्ट अवसरों पर सदस्यों का सामूहिक मिलन, अनुभवों का स्त्रोत है। दुर्खीम का धर्म की

उत्तपत्ति का सिद्धांत ऑस्ट्रेलिया की 'अरुंटा' नामक जनजाति के टोटम संबंधी क्रियाओं के अवलोकन तथा विश्लेषण पर आधारित है।

बोध प्रश्न-1

(अ) धर्म की उत्पत्ति के आत्मवादी सिद्धांत के प्रवर्तक कौन है?

(i) दुर्खीम (ii) एडवर्ड टायलर (iii) मैक्स मूलर (iv) जेम्स फ्रेजर

(ब) धर्म की उत्पत्ति के टोटमवादी सिद्धांत के प्रवर्तक कौन है?

(i) मैक्स मूलर (ii) जेम्स फ्रेजर (iii)) दुर्खीम (iv) एडवर्ड टायलर

6.5 धर्म के प्रकार्य (The Functions of Religion):

धर्म व्यक्ति एवं समाज के लिए कई प्रकार के कार्य का सम्पादन करता है। यही कारण है की धर्म नामक संस्था काफी समय बाद भी अस्तित्व मे बनी हुई है। समाजशास्त्रियों के अनुसार धर्म के निम्नलिखित कार्यो का सम्पादन करता है।

I. **पोरोहितीय (Priestly) प्रकार्य :** यह धर्म का महत्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य द्वारा धर्म समाज को एक सूत्र मे बांध कर रखता है। व्यक्तियों को व्यक्तिगत लक्ष्यों के स्थान पर सामूहिक हितों व लक्ष्योंको प्राप करने मे सहायता करता है। पोरोहितीय कार्यों के माध्यम से धर्म लोगों को विसमान्य होने से बचाता है तथा सामाजिक हित मे कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करता है। जो समाज मे नैतिकता बनाए रखने मे सहायक है।

II. **पैगंबरी (Prophetic) प्रकार्य :** यह कार्य पोरोहितीय कार्य के बिल्कुल विपरीत होता है। 'मानव निर्मित कानून से ईश्वरीय कानून श्रेष्ठ होता है' इस धारणा को मानने वालों का कहना है कि समाज में प्रस्तावित नियमों के अतिरिक्त मानव कार्य कर सकता है। धर्म के पैगंबरी कार्य व्यक्ति को सामाजिक समालोचना करने का अटल आधार उपलब्ध कराते हैं।

III. **स्व-व्यक्तित्व (Self-identity) प्रकार्य:** इस कार्य के अंतर्गत धर्म व्यक्ति की स्वयं के व्यक्तित्व का बोध कराता है यह बात सभी लोग स्वीकार करते हैं की धर्म समाजीकरण करने वाली संस्थानों में सबसे सशक्त होता है। धर्म मानव को स्वयं के व्यक्तित्व का बोध कराता हैं। इसी कारण व्यक्ति दैनिक जीवन में आने वाली चुनौतियों तथा संख्याओं का सामना करता है।

IV.संबल(Butters) संबंधी प्रकार्य : व्यक्ति जब भी व्यक्तिगत अथवा सामाजिक संकट में होता है तब धर्म उसे सहानुभूति व सहारा देता है। धर्म शोक और भय से मुक्ति दिलाता है। संकट के समय धर्म मनुष्य में आशा का संचार करता है। धर्म के इस कार्य को संबल देने संबंधी कार्य कह सकते हैं।

V.आयु-श्रेणी(Age-grading) देने संबंधी प्रकार्य : जीवन काल को विभिन्न सोपानों में बांटा गया है एक सोपान से दूसरे सोपान में जाने के लिए कुछ अनुष्ठान तथा पवित्र समारोह धर्म द्वारा निश्चित किए गए हैं। जीवन के प्रत्येक सोपान हेतु एक न एक संस्कार निश्चित है। धर्म द्वारा किए जाने वाले इस कार्य को आयु श्रेणी देने संबंधी कार्य कहते हैं

VI. व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण संबंधी प्रकार्य : जब मानव को वैज्ञानिक ज्ञान नहीं था तब धर्म ऐसी घटनाओं का स्पष्टीकरण करता था जो मानव समाज से परे थी। मानव जिन घटनाओं को समझने में असमर्थ होता था तब वह धर्म की शरण में जाता था व धर्म से उसे घटना का स्पष्टीकरण देता था ऐसी वस्तुओं को जो ऐतिहासिक अथवा प्रकृति के नियमों द्वारा ना समझे जा सके उनकी अंधविश्वासी व्याख्या धर्म द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए आकाश में बिजली का चमकता विद्युतीय उत्प्रेषण द्वारा होता है यह तथ्य जब तक मानव को ज्ञात नहीं था तब धर्म द्वारा इस ईश्वरीय प्रकोप की व्याख्या दी गई थी इस प्रकार धर्म व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण देने का कार्य भी करता है।

6.6 धर्म की विशेषताएं (Characteristics of Religion)

धर्म मानव समाज का एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थान है। इसकी अपनी मान्यताएँ, नियम, परंपराएँ तथा आचरण-प्रणालियाँ होती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से धर्म की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं।

1. विश्वासों का समुच्चय (Set of Beliefs)

धर्म का मुख्य आधार विश्वास (Faith) है। धार्मिक विश्वास—ईश्वर, आत्म, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, जैसी अवधारणाओं पर आधारित होते हैं। इन्हें वैज्ञानिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

2. पवित्र और अपवित्र का भेद (Sacred and Profane)

दुर्खीम के अनुसार धर्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है—पवित्र (Sacred) और अपवित्र (Profane) वस्तुओं, स्थलों, कर्मों में अंतर। जो वस्तुएँ पूजनीय व श्रद्धेय हों वे पवित्र मानी जाती हैं।

3. अनुष्ठान (Rituals)

धर्म में विशेष प्रकार के कर्मकांड और विधियाँ होती हैं, जैसे— पूजा, यज्ञ, नमाज़, उपवास, संस्कार आदि ये सामूहिक रूप से आचार-व्यवहार का ढाँचा बनाते हैं।

4. धार्मिक प्रतीक (Religious Symbols)

प्रत्येक धर्म के अपने प्रतीक होते हैं जो उसकी पहचान और शक्ति का स्रोत हैं। जैसे— क्रॉस, ॐ, चाँद-सितारा, खंडदीप, ये प्रतीक लोगों को मानसिक और भावनात्मक एकता प्रदान करते हैं।

5. धार्मिक ग्रंथ (Sacred Texts)

प्रत्येक धर्म के अपने पवित्र ग्रंथ होते हैं—जैसे गीता, कुरान, बाइबल, गुरु-ग्रंथ साहिब। इनमें आचार-संहिता, उपदेश और नियम शामिल होते हैं।

6. नैतिक आचार-संहिता (Moral Code)

धर्म लोगों को नैतिक नियम प्रदान करता है, जैसे—सत्य बोलना, हिंसा न करना, दान करना, परोपकार,धर्म के कारण समाज में अनुशासन व नियंत्रण बना रहता है।

7. संगठनात्मक संरचना (Religious Organization)

धर्म के निश्चित संगठन होते हैं—पंथ, सम्प्रदाय, मठ, चर्च ये धार्मिक गतिविधियों का संचालन करते हैं।

8. सामूहिकता और एकता (Social Cohesion)

धर्म लोगों को एक साथ जोड़ता है। सामूहिक अनुष्ठान, त्योहार और समारोह सामाजिक एकता बढ़ाते हैं।

9. जीवन को अर्थ और उद्देश्य देना (Meaning of Life)

धर्म मनुष्य को जीवन के उद्देश्य, अस्तित्व, मृत्यु और ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने में सहायता देता है।

यह आध्यात्मिक संतोष प्रदान करता है।

10. परंपरा और संस्कृति का संरक्षण (Preservation of Culture)

धर्म— संस्कृति, ज्ञान, मूल्य, परंपराओं आदि को को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाता है। त्योहार , रीति-रिवाज, संस्कार धर्म से जुड़े होते हैं।

6.7 धर्म की उपयोगिता (Utility of Religion):

प्राचीन काल से ही मानव जीवन के लिये धर्म की आवश्यकता पर बल दिया गया है। धर्म की उपयोगिता के संदर्भ में विभिन्न निम्नलिखित मत है।

(1) भारतीय विचारकों के अनुसार धर्म की उपयोगिता (Utility of Religion According to Indian Thinkers): धर्म की उपयोगिता के सम्बन्ध में भारतीय विचारकों का मत निम्न प्रकार है.

I. धर्म मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।
II. धर्म दुःखों से मुक्ति प्रदान कराता है।
III. यह आनन्द का स्रोत है।
IV. धर्म-हीन व्यक्ति खाते-पीते पशु के तुल्य है। पशु तथा मानव में धर्म का ही अन्तर है।
V. धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है।
VI. धर्म मनुष्य को वह संबल प्रदान करता है, जिससे मनुष्य अपने जीवन मार्ग का निर्धारण करता है।

(2) पाश्चात्य विचार के अनुसार धर्म की उपयोगिता (Utility of Religion According to Wetern Thinkers): पाश्चात्य विचारक मैक्समूलर का मत है कि, 'मनुष्य का इतिहास धर्म का इतिहास है।' वस्तुतः धर्मशास्त्र अन्य किसी भी मानवीय शास्त्र की अपेक्षा अधिक प्राचीन तथा प्रभावशाली है। धर्म की उपयोगिता के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं.

I. पाश्चात्य विचारकों के एक वर्ग का मत है कि मानव विकास के अध्ययन के अभाव में कोई भी अध्ययन अपूर्ण रहेगा।
II. एडवर्ड का मत है कि मनुष्य के इतिहास में कोई वस्तु इतनी अधिक प्रभावशाली नहीं है जो धर्म की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो।
III. टालस्टाय का मत है कि, "मनुष्य अन्ततः सत्य से ही प्यार करता है और परम्पराओं के संसार को पीछे छोड़ देता है। जिस तरह दार्शनिक सत्य को ही उच्च आदर्श मानता हैए उसी प्रकार सच्चे धर्म के पथिक के हृदय में परम सत्य के लिये ही प्रेम का सागर उमड़ता है। अतएव वास्तविक धर्म परम्पराओं का पालन ही नहीं वरन् परम सत्य की आराधना मात्र है, परम सत्य का अभिनन्दन है।"

(3) मानव जीवन के लिये धर्म की उपयोगिता (Utility of Religion For Human Life): मानव जीवन के लिये धर्म की उपयोगिता का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है।

I. नैतिक दृष्टि से धर्म की उपयोगिता: नैतिक दृष्टि से धर्म का मूल्यांकन करने पर यह ज्ञात होता है कि नैतिकता धर्म का मूल है।

II. प्रत्येक धर्म के नैतिक आचार.विचार मिश्रित है। इनके अभाव में धर्म को मर्यादा सुरक्षित नहीं रह सकती।

III. धर्म मानव जीवन को वह मार्ग दिखाता है जिस पर चलकर मनुष्य जीवन के अभीष्ट तक पहुँच सकता है। ईश्वर तक पहुंचने के लिये नैतिक आचार-विचार रूपी सोपानों का सहारा लिया जाता है।

IV. सभी धर्म अपने नैतिक दृष्टिकोण के प्रति कट्टर होते है। धार्मिक कार्यों के प्रतिपादन में नैतिकता को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है।

V. नैतिकता धर्म से पृथक वस्तु है पर प्राचीन काल में नैतिकता धर्म के अन्तर्गत ही आती थी। नैतिक व्यक्ति के लिये धार्मिक होना आवश्यक नहीं है। कोई व्यक्ति अनीश्वरवादी तथा धर्म विरोधी होकर भी नैतिक हो सकता है।

6.8 परिभाषिक शब्दावली:

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार, "सामाजिक विज्ञानों में धर्म की वास्तविकता के सन्दर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता वरन् सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है"।

डेविस (Davis) के शब्दों में, "मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थायी एवं व्यापक है कि धर्म को समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते हैं"।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर:

1- ii

2- iii

6.10 सारांश :

धर्म आस्था और श्रद्धा पर आधारित एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है, जिसकी वैज्ञानिक रूप से पूर्ण व्याख्या कर पाना संभव नहीं है। मानव सभ्यता के आरंभ से ही धर्म सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है और यह समाज की स्थिरता, नैतिकता तथा सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। धर्म न केवल व्यक्ति को जीवन से संबंधित समस्याओं निदान ही नहीं करता अपितु व्यक्ति को जीवन का अर्थ और उद्देश्य भी प्रदान करता है। समाजशास्त्र धर्म का अध्ययन आध्यात्मिक सत्य के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक तथ्य के रूप में

करता है। समाजशास्त्रियों का उद्देश्य यह समझना है कि धर्म का स्वरूप क्या है और वह सामाजिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मजूमदार डी. एन. एवं मदन टी. एन., "समाजशास्त्र का परिचय" इलाहाबाद, किताब महल प्रकाशन।
2. शर्मा, राम आहूजा., "समाजशास्त्र: मूल सिद्धांत", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
3. जोशी, के. एन., "धर्म और समाज", अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. सिंह, योगेन्द्र, "भारतीय समाज: संरचना और परिवर्तन", रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. दुबे, एस. सी., "भारतीय समाज", नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
6. Durkheim, E. (1912/2001). The elementary forms of religious life (C. Cosman, Trans.). Oxford University Press.
7. Weber, M. (1905/2002). The Protestant ethic and the spirit of capitalism (S. Kalberg, Trans.). Blackwell Publishing.
8. Marx, K. (1844/1975). Contribution to the critique of Hegel's philosophy of right. Progress Publishers.
9. Malinowski, B. (1948). Magic, science and religion and other essays. Doubleday.
10. Radcliffe-Brown, A. R. (1952). Structure and function in primitive society. Cohen & West.
11. Johnson, H. M. (1960). Sociology: A systematic introduction. Harcourt, Brace & World.

6.12 निबंधनात्मक प्रश्न:

1- धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

2- धर्म का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार्यों की चर्चा कीजिए

3- समाजशास्त्रीय विचारकों द्वारा धर्म की व्याख्या करते हुए उसकी उपयोगिता की चर्चा कीजिए।

ईकाई- 07 **घरेलू कार्य**

Domestic Work

ईकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 घरेलू कार्य का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 भारतीय संदर्भ मे घरेलू कार्य

7.4 घरेलू कार्य के प्रकार

7.4.1 भौतिक कार्य

7.4.2 देखभाल संबंधित कार्य

7.4.3 परिवार प्रबंधन एवं निर्माण सम्बंधित कार्य

7.4.4 भावनात्मक कार्य

7.5 घरेलू कार्य के संबंधित प्रमुख नारीवादी दृष्टिकोण

7.6 घरेलू कार्य संबंधित समस्याएं

7.6.1 व्यक्तिगत समस्याएं

7.6.2 सामाजिक-आर्थिक समस्याएं

7.7 घरेलू कार्य से संबंधित संवैधानिक प्रयास

7.8 घरेलू कार्यों को मान्यता देने के उपाय

7.9 सारांश

7.10 निबंधनात्मक प्रश्न

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.0 प्रस्तावना :

मानव समाज के विकास में परिवार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। परिवार वह प्राथमिक सामाजिक संस्था है जो मनुष्य के सामाजीकरण, सुरक्षा, देखभाल, मूल्य-संस्कार तथा जीवन के लिए आवश्यक होता है। परिवार को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक गतिविधियों को व्यापक रूप से घरेलू कार्य कहा जाता है। घरेलू कार्य का अर्थ घर के अंदर किए जाने वाले सभी कामों से है, जैसे कि सफाई, खाना पकाना, कपड़े धोना, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल करना, बागवानी, और घर का रखरखाव आदि को घरेलू कार्य (Domestic Work) या Household Labour कहा जाता है।

आधुनिक समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नारीवाद, मानवशास्त्र आदि श्रम के अध्ययन का एक केंद्रीय विषय रहा है। घरेलू कार्य का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह लैंगिक (Gendered) होने के साथ-साथ मानवीय संबंधों के लिये आवश्यक होता है। अधिकांश समाजों में यह माना जाता है की घरेलू कार्य महिलाओं का है ना की पुरुषों का। इस विभाजन को नारीवादी विद्वानों ने मातृ-वंशीय श्रम विभाजन (Patriarchal Division of Labour) कहा है। इस असमान कार्य को समझाते हुए UNDP की रिपोर्टों के अनुसार— महिलाएँ, पुरुषों की तुलना में 3 से 5 गुना अधिक घरेलू कार्य करती हैं। विश्व स्तर पर महिलाएँ प्रतिदिन औसतन 4.2 घंटे घरेलू कार्य में लगाती हैं, जबकि पुरुष सिर्फ 1.5 घंटे

घरेलू कार्य वह अदृश्य और अवैतनिक श्रम है जो घर, परिवार तथा दैनिक जीवन को बनाए रखता है। भोजन बनाना, घर की सफाई, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल, पानी-ईंधन की व्यवस्था, कपड़े धोना, राशन लाना, भावनात्मक सहायता देना, और निर्णय लेने की छोटी-बड़ी गतिविधियाँ—ये सभी घरेलू कार्य की श्रेणी में आते हैं। यह वह श्रम है जो समाज की आर्थिक संरचना को स्थिर बनाए रखने के लिए समाज को पुनरुत्पादित करता है। ऐतिहासिक रूप से एक 'कार्य' के रूप में घरेलू कार्य को पहचान नहीं मिली। इसी कारण घरेलू कार्य अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना होता है कि घरेलू कार्य किस प्रकार लैंगिक असमानता, आर्थिक विषमता और सामाजिक संरचना को प्रभावित करता है।

7.1 उद्देश्य

1. इस इकाई के माध्यम से घरेलू कार्य के अर्थ एवं परिभाषा को समझ पाएंगे।
2. इस इकाई के माध्यम से घरेलू कार्य एवं उसके प्रकारों की चर्चा करेंगे।
3. घरेलू कार्य से संबंधित समस्याओं एवं संवैधानिक प्रयासों का भी अध्ययन कर पाएंगे।

7.2 घरेलू कार्य का अर्थ एवं परिभाषा-:

घरेलू कार्य (Domestic Work) से आशय उन सभी कार्यों से है जो किसी घर अथवा परिवार को सही ढंग से चलाने के लिए आवश्यक होते हैं, जो बिना वेतन, मान्यता और सामाजिक सम्मान के किए जाते हैं। इनमें खान-पान की व्यवस्था से लेकर सफाई, बच्चों की देखभाल, वृद्धों की सेवा, घर का प्रबंधन एवं मानसिक-भावनात्मक और सांस्कृतिक दायित्व शामिल होते हैं। **संक्षेप में,** घरेलू कार्य वह कार्य अथवा अवैतनिक श्रम है जो परिवार के सदस्यों, जिसमें विशेषकर महिलाओं द्वारा घर के संचालन, देखभाल और प्रबंधन के लिए किया जाता है।

घरेलू कार्य, एक प्रकार का अवैतनिक कार्य है जो परिवार के कामकाज में योगदान देता है एवं जिसे अधिकांशतः कम महत्व दिया जाता है। घरेलू कार्य से संबंधित परिभाषा को निम्नलिखित सामाजिक मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है।

1. समाजशास्त्रीय परिभाषा

घरेलू कार्य वह सभी सामाजिक-आर्थिक गतिविधियाँ हैं जो परिवार के सदस्यों की जीवन आधारित आवश्यकताओं को पूरा करने मे महत्वपूर्ण योगदान देती है, साथ ही घर एवं परिवार की संरचना, कार्य और व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने का कार्य करती है। इस आधार पर समाजशास्त्र घरेलू कार्य को सामाजिक पुनरुत्पादन (Social Reproduction) का केंद्रीय तत्व मानता है।

2. आर्थिक परिभाषा

आर्थिक जगत में अर्थशास्त्र घरेलू कार्य को गैर-बाजार श्रम (Non-Market Labour) माना जाता है। जिसमे किसी भी प्रकार का संवैधानिक नियम नहीं पाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप घरेलू कार्यों को अवैतनिक श्रम के रूप में देखा जाता है। इस आधार पर व्यक्ति को सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

3. नारीवादी परिभाषा

नारीवादी दृष्टिकोण के अनुसार घरेलू कार्य एक लिंग आधारित श्रम है, जिसमे महिला एवं परूषों को संयुक्त रूप से देखा जाता है— यह एक ऐसा श्रम हैं जो ऐतिहासिक रूप से महिलाओं पर थोपा गया है। यह महिलाओं को आर्थिक निर्भरता की स्थिति में धकेलता है और उनकी क्षमता तथा स्वतंत्रता को सीमित करने कर भी करता है।

4. मानवशास्त्रीय परिभाषा

इस मे घरेलू कार्य एक सांस्कृतिक रूप से निर्मित वह श्रम है जो समाज के रीति-रिवाज़ों, मूल्यों और परम्पराओं के माध्यम से निर्धारित होता है। जिसके अंतर्गत विभिन्न समाजों में घरेलू कार्य की सांस्कृतिक पृष्टभूमि लैंगिक विभाजन से भिन्न हैं। सांस्कृतिक रूप से अधिकांश समाजों में यह कार्य महिला-पुरुषों के अलग-अलग होते है।

7.3 भारतीय संदर्भ मे घरेलू कार्य :

घरेलू कार्य (Domestic Work) भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना का एक अनिवार्य तत्व है, परंतु घरेलू कार्य को भारतीय समाज में अदृश्य हिस्सा माना जाता है। घरेलू कार्य वह श्रम है जो घर के भीतर- रसोई, सफाई, कपड़े धोने, बच्चों व बुज़ुर्गों की देखभाल, पारिवारिक प्रबंधन आदि के रूप मे प्रतिदिन किया जाता है। भारतीय संदर्भ में यह कार्य मुख्यतः महिलाओं से जुड़ा माना जाता है और जिसे एक श्रमिक ना मानकर आवश्यक रूप से महिलाओं की जिम्मेदारी समझा जाता है। यही कारण है कि घरेलू कार्य को न तो उचित सामाजिक एवं न आर्थिक मान्यता मिलती है।

भारतीय समाजशास्त्रियों **जैसे एम.एन. श्रीनिवास, आन्द्रे बेते, इला भट्ट आदि** विद्वानों ने बताया है कि भारतीय संदर्भ में कार्य-भूमिकाओं का विभाजन पुरुषों और महिलाओं के आधार पर होता आया है। जिसके अंतर्गत पुरुषों को खेती, व्यापार, युद्ध, एवं राजनीति से जोड़ा गया जबकि महिलाओं को घर, बच्चे, भोजन बनाना एवं देखभाल आदि से जोड़ा गया है।

ऐतिहासिक रूप से घरेलू कार्य को महिलाओं के कार्यों का मूल हिस्सा माना गया। जिसे श्रम-विभाजन में मजबूती से स्थापित किया गया है। जहाँ पूर्व के संयुक्त परिवारों में घरेलू कार्य सामूहिक होता था, परंतु वर्तमान के आधुनिकीकरण और नगरीकरण के पश्चात यह कार्य एक सदस्य पर ही केंद्रित हो गया है। घरेलू कार्य को कभी भी वेतनयुक्त श्रम या उत्पादक कार्य की श्रेणी में नहीं रखा गया। जिससे इसके अवमूल्यन के परिणामस्वरूप भी यह परंपरा आज भी उसी रूप में कायम है। जिस कारण महिलाओं को उनके श्रम के आधार पर बेहतर पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है।

घरेलू कार्य की प्रमुख विशेषताएँ

1. **अवैतनिक श्रम** –घरेलू कार्य बिना किसी आर्थिक भुगतान के किया जाता है जिससे व्यक्तिगत एवं आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। जिससे पारिवारिक समस्या उत्पन्न होती है।

2. **अदृश्य श्रम** – इसे 'कार्य' नहीं बल्कि 'कर्तव्य' माना जाता रहा है, इसलिए समाज में इसकी मान्यता कम है।
3. **निरंतरता** – घरेलू कार्य में किसी भी प्रकार का अवकाश नहीं होता है ,यह सुबह से रात तक चलता है।
4. **बहु-स्तरीय प्रकृति** – घरेलू कार्यों के अंतर्गत देखभाल, भावनात्मक समर्थन, प्रबंधन आदि कई प्रकार के कार्य शामिल किए जाते हैं।
5. **लैंगिक विभाजन** – भारतीय समाजों में इस प्रकार के कार्यों को महिलाओं का 'स्वाभाविक' कार्य माना गया है।
6. **भावनात्मक श्रम का हिस्सा** – घरेलू कार्य सिर्फ भौतिक कार्य ही नहीं, बल्कि भावनात्मक देखभाल का हिस्सा भी है।
7. **सामाजिक पुनरुत्पादन** – इस संदर्भ में यह समाज को नई पीढ़ी प्रदान करता है। जिसके फलस्वरूप यह श्रमिक शक्ति को तैयार कर मानव संसाधन को पोषित करता है।

7.4 घरेलू कार्य के प्रकार:-

घरेलू कार्य को निम्नलिखित श्रमों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

1. **भौतिक श्रम (Physical Labour)**

इसके अंतर्गत भोजन बनाना, सफाई करना, बर्तन-कपड़े धोना, घर की देखरेख, पानी, ईंधन, राशन लाना आदि को रखा गया है। जिसमे घरेलू श्रम को करने वालों को शारीरिक समस्याओं का सामना करना पडता है।

2. **देखभाल श्रम (Care Work)**

मानव समाज का संचालन केवल आर्थिक उत्पादन या तकनीकी विकास पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि उस अदृश्य श्रम पर भी आधारित है जिसे देखभाल श्रम कहा जाता है। यह वह श्रम है जो दूसरों की आवश्यकताओं, भावनाओं, स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण की पूर्ति के लिए किया जाता है- जैसे बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा एवं बीमारों की देखभाल आदि

3. परिवार प्रबंधन एवं निर्णय-निर्माण श्रम (Household Management & Decision-Making Labour)

घरेलू कार्य केवल घर की सफाई, खाना बनाना या बच्चों की देखभाल तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें संपूर्ण घरेलू इकाई का प्रबंधन और निर्णय-निर्माण शामिल होता है। परिवार को संतुलित, सुरक्षित, आर्थिक रूप से

सक्षम और सौहार्दपूर्ण बनाए रखने के लिए उचित योजनाएँ तथा निर्णय लेना आवश्यक होता है। इसलिए घरेलू कार्य एक महत्वपूर्ण प्रबंधकीय प्रक्रिया है। जैसे- बजट, खर्च, बचत का प्रबंधन, समय-सारणी बनाना, सामाजिक संबंध बनाए रखना आदि।

4. भावनात्मक श्रम (Emotional Labour)

घरेलू कार्य केवल शारीरिक श्रम तक सीमित नहीं होता, बल्कि इसमें एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम - भावनात्मक श्रम (Emotional Labour) भी शामिल होता है। यह वह अदृश्य, अवैतनिक और निरंतर किया जाने वाला श्रम है जिसमें व्यक्ति परिवार के सदस्यों की भावनाओं, व्यवहार, मानसिक स्थिति और संबंधों को संतुलित तथा सुरक्षित बनाए रखने में अपनी भावनात्मक ऊर्जा का निवेश करता है।

स्वमूल्याँकनात्मक हेतु अभ्यास प्रश्न :-

प्रश्न 1- घरेलू कार्य से संबंधित समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए।

_____

_____

_____

प्रश्न 2- घरेलू कार्य से आप क्या समझते हो। संक्षिप्त टिप्पणी करें।

_____

_____

7.5 घरेलू कार्यों से संबंधित नारीवादी दृष्टिकोण:-

घरेलू कार्य समाजशास्त्र में कई सिद्धांतों से जुड़ा है—

1. संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural Functionalism Approach)- टालकॉट पार्सन्स के अनुसार—परिवार की दो भूमिकाएँ होती हैं: पहली यंत्रात्मक भूमिका (Instrumental Role), जिसमे महिला की भूमिका प्रमुख होती है, महिला भावनात्मक और घरेलू कार्य करती है जिससे परिवार का संतुलन बना रहता है। हालाँकि यह दृष्टिकोण लैंगिक असमानता को उचित ठहराता है, इसलिए इसकी आलोचना की गई है।

2. संघर्ष सिद्धांत (Conflict Theory) - मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार मार्क्सवाद समाज की आर्थिक संरचना और वर्ग संबंधों के आधार पर सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करता है। घरेलू कार्य के संदर्भ में

मार्क्सवादी दृष्टिकोण यह समझने का प्रयास करता है कि घर के भीतर किया जाने वाला अवैतनिक कार्य पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली, श्रम शोषण, महिला दमन और वर्ग-संरचना से जुड़ा है। मार्क्सवादी विचारकों में कार्ल मार्क्स, एंगेल्स, मार्क्सवादी नारीवादी जैसे सिल्विया फेडेरिची, एंजेला डेविस, क्रिस्टीन डेल्फी, मार्गरेट बेनस्ट आदि ने घरेलू कार्य को पूँजीवाद की मूलभूत संरचना का महत्वपूर्ण एवं अदृश्य हिस्सा बताया है।

3. उदारवादी नारीवाद

उदारवादी नारीवादी विचारकों का कहना है कि घरेलू कार्य को केवल महिलाओं का स्वाभाविक कर्तव्य माना गया है। यह नरिवाद इस 'स्वभाविक भूमिका' के मिथक का विरोध करते हुए, यह बताता है कि घरेलू कार्य एक सही अर्थों में वह श्रम है, जो मूल्यवान, सामाजिक और आर्थिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। उदारवादी नारीवादी घरेलू कार्य के समान वितरण पर जोर देते हैं। जिसमें पुरुष और महिलाओं दोनों को समान भागीदारी की बात की जाती है।

4. रैडिकल नारीवाद

रेडिकल नारीवादी विचारधारा वह धारा है जो महिलाओं के उत्पीड़न का मूल कारण पितृसत्तात्मक समाज को मानती है। जिसके अनुसार समाज की संपूर्ण संरचना- परिवार, धर्म, संस्कृति, भाषा, विवाह, लैंगिक भूमिकाएँ आदि सभी पुरुष प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए निर्मित किए गए हैं। अतः घरेलू कार्य के संदर्भ में रैडिकल नारीवादी विचारक घर को महिलाओं के लिए एक अदृश्य **'कैदखाना'** मानते है। रैडिकल नारीवादी चिंतकों जैसे शलामिथ फायरस्टोन (Sulamith Firestone) कैथरीन मैकिनन (Catharine A Mackinnon) जूलिएट मिशेल (Juliet Mitchell) आदि प्रमुख है।

6. समाजवादी नारीवाद

समाजवादी नारीवाद का मानना है कि महिलाओं का उपेक्षित और अवैतनिक घरेलू श्रम पूँजीवादी उत्पादन और पितृसत्तात्मक व्यवस्था दोनों का हिस्सा है। जिसमें घरेलू कार्य को केवल लैंगिक ही नहीं आर्थिक तथा संरचनात्मक मुद्दा माना जाता है।

7.6 घरेलू कार्यों से संबंधित समस्याएं:-

घरेलू कार्य (Domestic Work) किसी भी परिवार और समाज के सुचारू संचालन का आधार है। यह कार्य निरंतर, अविराम और व्यापक होता है। इसके बावजूद घरेलू कार्य को समाज में 'काम' के रूप में पूर्ण मान्यता नहीं मिलती। इसे अधिकांश स्वाभाविक, जैविक या महिलाओं की जिम्मेदारी मान लिया जाता है, यह अवमूल्यन

अनेक सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, और लैंगिक समस्याओं को जन्म देता है। वर्तमान समाज में विकसित तकनीकी साधनों और बदलती हुई पारिवारिक संरचना के परिणामस्वरूप घरेलू कार्यों से संबंधित समस्याएँ उत्पन्न हो रहीं हैं। इसमें घरेलू कार्यों से जुड़ी प्रमुख समस्याओं का विस्तृत समाजशास्त्रीय और व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

I. व्यक्तिगत समस्यायें
II. सामाजिक-आर्थिक समस्यायें

(I) **व्यक्तिगत समस्यायें-**

व्यक्तिगत समस्याओं के अन्तर्गत ऐसी समस्याओं का उल्लेख किया गया है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती हैं। अतः व्यक्तिगत समस्याओं की प्रकृति के निम्न प्रकार की हो सकते है।

(अ) व्यक्तिगत समस्याओं का सम्बन्ध व प्रभाव व्यक्ति विशेष तक सीमित होता है ,जो जन्मजात अथवा जन्मोपरान्त दोनों हो सकती हैं।

(ब) व्यक्तिगत समस्यायें व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में बाधाएं, असंतुलन या विघटन उत्पन्न करती हैं। जिससे उन्हे शारीरिक एवं स्वास्थ्य संबंधित समस्याओ का सामना करना पड़ता है।

(स) व्यक्तिगत समस्यायें सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की उपज होती हैं और व्यक्ति स्वयं भी इनके लिए उत्तरदायी होता हैं। परंतु व्यक्ति इन समस्याओं को स्वयं दूर करने का प्रयास करता है।

(द) परिवार की आर्थिक निर्भरता के परिणामस्वरूप अधिकांश व्यक्ति आजीविका जुटाने हेतु रोजगार या कार्य की तलाश में अपना मूल निवास स्थान व परिजनों को छोड़कर अकेले औद्योगिक नगरों में चले जाते हैं। जो उन्हें, उनके मूल स्थान से दूर कर देती है।

(II) सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें - इन समस्याओं मे सामाजिक एवं आर्थिक समस्या की भी भूमिका होती है, जो किसी भी घरेलू कार्य के संचालन का मूल आधार होता है, लेकिन जब इनका उचित प्रबंधन नहीं होता, तो कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ये समस्याएँ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता तथा संघर्ष पैदा करती हैं। अतः सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के अंतर्गत निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न होती है।

सामाजिक समस्यायें-:

1) **निर्धनता-** निर्धनता एक सामाजिक आर्थिक तथ्य है । सम्पूर्ण विश्व के लिए यह एक सामाजिक नैतिक और बौद्धिक चुनौती है। निर्धनता एक आर्थिक स्थिति है किन्तु यह एक सामाजिक पद को भी प्रकट करती है क्योंकि एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध सामाजिक श्रेणी व वर्ग से भी हैं ।
2) **बाल-श्रम -** निर्धनता और अपर्याप्त आय के कारण लोगों को अपने अल्पवयस्क बच्चो को भी पारिश्रमिक वाले कार्यों में लगाना पड़ता है किन्तु यदि पारिवारिक सदस्य नहीं भी चाहते तो भी उच्च वर्गों के सदस्यों द्वारा ऐसा करने के लिए प्रेरित किया जाता है क्योंकि बाल श्रमिकों से कम दाम में अधिक काम लिया जा सकता है।
3) **सुविधाओं की कमी-** घरेलू कार्य से जुड़ी सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है सुविधाओं की कमी, जो न केवल कार्य की गुणवत्ता को प्रभावित करती है बल्कि घरेलू कार्य करने वाले व्यक्तियों विशेषकर महिलाओं के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है।
4) **वांछित सम्मान न मिलना-** अधिकांश घरेलू कार्य से संबंधित व्यक्ति यह महसूस करता हैं कि जो सम्मान वास्तव में उन्हें मिलना चाहिए वह उसे नहीं मिल पाता है। उदाहरणार्थ बहुत कम परिवारों में ही उन्हें बैठने के लिए आसन दिये जाते हैं अन्यथा उन्हें फर्श पर ही बैठना पड़ता है।

आर्थिक समस्यायें-:

1. **आर्थिक असमानता-** औद्योगीकरण, नगरीकरण, यन्त्रीकरण एवं सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की समकालीन संरचना में एक ओर पूंजीपति वर्ग हैं तो दूसरी ओर श्रमिक एवं निर्धन वर्ग । जिनमे आर्थिक रूप से असमानता देखने को मिलती है।
2. **आर्थिक पराश्रयता एवं ऋणग्रस्तता -** आर्थिक पराश्रयता (Economic Dependence) और ऋणग्रस्तता (Indebtedness) ऐसे सामाजिक-आर्थिक मुद्दे हैं जो परिवार, समाज और व्यक्ति के विकास को सीधे प्रभावित करते हैं। यह निर्भरता धीरे-धीरे ऋण लेने और ऋण के जाल में फँसने की स्थिति को जन्म देती है।
3. **पारिश्रमिक वृद्धि में समस्या-** पारिश्रमिक किसी भी कर्मचारी के कार्य, योग्यता और योगदान के आधार पर दिया जाता है। लेकिन कई बार संस्थाएँ, संगठन और नियोक्ता समय पर या उचित रूप से पारिश्रमिक नहीं बढ़ाते। इसके पीछे कई संरचनात्मक, आर्थिक और प्रबंधन-संबंधी समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं के कारण कर्मचारी असंतोष, संगठनात्मक तनाव और उत्पादनशीलता में कमी आती है। जबकि अनेक घरेलू कार्यों में प्रबंधन स्वतः पारिश्रमिक में वृद्धि नहीं करते और निवेदन करने भी टाल देते हैं।

4. **समय का समयोजन-** घरेलू कार्यों की प्रकृति ऐसी होती है कि उनका कोई निश्चित समय नहीं होता। खाना बनाना, सफाई, बच्चों की देखभाल, स्कूल, ऑफिस की तैयारी आदि इन सभी मे काफी समय लग जाता है। समय प्रबंधन की कमी से परिवार के सदस्यों को व्यक्तिगत समय नहीं मिल पाता। इससे तनाव, चिड़चिड़ापन और रिश्तों में दूरी बढ़ सकती है। बच्चों के साथ समय न बिताने से उनकी भावनात्मक आवश्यकताएँ अधूरी रह जाती हैंए जिससे वे असुरक्षा और उपेक्षा महसूस कर सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि घरेलू कार्य से संबंधित लोग प्रायः विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हैं।

7.7 घरेलू कार्यों से संबंधित संवैधानिक प्रयास:-

घरेलू कार्यों से संबंधित प्रमुख कानूनों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इस इकाई में घरेलू काम करने वालों के लिए घरेलू हिंसा, महिला सुरक्षा और घरेलू कार्यों के अधिकार से जुड़े संवैधानिक प्रयासों की चर्चा करेंगे। घरेलू कार्य के अंतर्गत घर के भीतर किया गया अवैतनिक कार्य एवं घर के बाहर घरेलू कामगारों द्वारा किया गया वेतनभोगी कार्य सम्मिलित है, अतः इन कामगारों के काम की सुरक्षा, सम्मान और अधिकारों के लिए कई निम्नलिखित कानून और नीतियाँ बनाए गए हैं।

1) **घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005 (Protection of Women from Domestic Voilence,2005)** – यह कानून घरेलू कार्य करने वाली महिलाओं को अत्यंत महत्वपूर्ण सुरक्षा देता है। इस कानून के आन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, यौन, आर्थिक और भावनात्मक हिंसा से सुरक्षा शामिल है।
2) **न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 (Minimum Wages Act,1948)** – कई राज्यों ने घरेलू कामगारों को न्यूनतम वेतन की सूची में शामिल किया है। जिसके अंतर्गत घरेलू कामगार को निश्चित मजदूरी, कार्य घंटे और अवकाश का अधिकार मिलता है,तथा कम मजदूरी देना अपराध माना जाता है। जिन राज्यों ने घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम वेतन तय किया है,उनमे दिल्ली, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, राजस्थान, केरल, बिहार, हरियाणा, झारखंड आदि शामिल है।
3) **असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008** – घरेलू कामगार असंगठित क्षेत्र का हिस्सा हैं। इस कानून के अंतर्गत स्वास्थ्य बीमा, दुर्घटना बीमा, पेंशन, मातृत्व लाभ, जैसी योजनाएँ घरेलू कामगारों को प्रदान की जा सकती हैं।
4) **यौन उत्पीड़न निवारण कानून, 2013 (Sexual Harassment at Workplace Act)** –घरेलू कामगार भी इस कानून के तहत संरक्षित हैं। यदि घर अथवा कार्यस्थल में घरेलू कामगार के साथ यौन

उत्पीड़न होता है, तो वह स्थानीय समिति (Local Committee) के पास शिकायत कर सकते है। जो उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करती है।

5) **बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976 (Bonded Labour System Abolition Act)** – यदि घरेलू कामगार से जबरन काम कराया जा रहा है, वेतन रोका जा रहा है या कर्ज के बदले काम कराया जा रहा है,तो यह कानून उसे पूर्ण सुरक्षा देता है। इस प्रकार यह अधिनियम फहरेलू कामगारों को सामाजिक एन आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता हैं।

7.8 घरेलू कार्य को मान्यता देने के उपाय-:

भारतीय समाज में घरेलू कार्य को परंपरागत रूप से महिलाओं की स्वाभाविक जिम्मेदारी माना गया है, जिसके कारण यह कार्य अदृश्य, अवैतनिक और कम आंका गया है। घरेलू काम परिवार और समाज की आर्थिक-सामाजिक संरचना को बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, फिर भी इसे किसी प्रकार की आधिकारिक मान्यता प्राप्त नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि घरेलू कार्य को वैचारिक, सामाजिक, आर्थिक और कानूनी स्तर पर मान्यता दी जाए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी हो सकते हैं।

1. **घरेलू कार्य को आर्थिक मूल्य देना-** घरेलू काम में समयए श्रम और कौशल की आवश्यकता होती हैए लेकिन इसे ष्भावनात्मक कर्तव्यष् मानकर इसका मूल्यांकन नहीं किया जाता। इसे आर्थिक मूल्य देने के लिए घरेलू कार्य को राष्ट्रीय आय में शामिल करने के लिए प्रयास किए जाएँ। महिलाओं के कार्य घंटों का सर्वेक्षण कर टाइम-यूज़ सर्वे के आधार पर आर्थिक मूल्यांकन किया जाए। कार्य के अनुसार श्रम तय की जाए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि घरेलू काम भी अर्थव्यवस्था में योगदान देता है। इससे महिलाओं के श्रम को सम्मान मिलेगा और नीति निर्माण में भी उनके कार्य को गंभीरता से देखा जाएगा।
2. **पुरुषों की समान भागीदारी-** घरेलू कार्य का बोझ अभी भी अधिकांशतः महिलाओं पर ही है। समान भागीदारी के लिए परिवार के भीतर कार्यों का न्यायपूर्ण बँटवारा किया जाए। पुरुषों को खाना बनानाए साफ-सफाई, बच्चों की देखभाल, वरिष्ठों की सेवा जैसे कार्यों में सक्रिय रूप से शामिल किया जाए। स्कूल और समाज में बचपन से ही लैंगिक समानता की शिक्षा दी जाए। समान भागीदारी से न केवल महिलाओं का बोझ कम होगाए बल्कि घरेलू कार्य का महत्व भी बढ़ेगा।
3. **घरेलू कार्य को शिक्षा पाठ्यक्रम में शामिल करना-** घरेलू कार्य एक कौशल आधारित कार्य हैए जिसमें प्रबंधन, पोषण, समय-योजना, बजट-निर्माण, सफाई-सुरक्षा और देखभाल जैसे महत्वपूर्ण पक्ष शामिल हैं। यदि इसे पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए तो, कार्य के प्रति सम्मान बढ़ेगा। जिससे लड़के और लड़कियाँ दोनों घरेलू जिम्मेदारियों में दक्ष बनेंगे। भविष्य में परिवार का डिज़ाइन अधिक समतामूलक

बनेगा। घरेलू विज्ञान, जीवन कौशल शिक्षा तथा सामाजिक विज्ञान में इस विषय को व्यवस्थित रूप से पढ़ाया जा सकता है।

4. **सरकारी नीतियाँ-** घरेलू कार्य के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमों की सहायता लि जा सकती है।
   I. **क्रेच एवं डे -** केयर सुविधा कार्यरत महिलाओं पर घरेलू देखभाल का बोझ अधिक होने से वे श्रम बाजार में कम भाग ले पाती हैं। सरकार की ओर से क्रेच, आँगनबाड़ी और डे-केयर की सुविधाएँ बढ़ाकर इस बोझ को कम किया जा सकता है।
   II. **मातृत्व एवं पितृत्व अवकाश-** मातृत्व अवकाश की तरह पितृत्व अवकाश को भी अनिवार्य किया जाए। इससे बच्चों की देखभाल का दायित्व साझा होगा और घरेलू काम में लैंगिक समानता बढ़ेगी।
   III. **महिला एवं घरेलू श्रम पर आधारित योजनाएँ-** इन श्रम आधारित योजनाओं में जैसे- स्वयं सहायता समूह ,कौशल विकास कार्यक्रम, और महिला सुरक्षा योजनाएँ आदि सभी महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाते हैं।

5. **घरेलू कार्य को कानूनी मान्यता -** कुछ देशों में घरेलू कार्य को कानूनी मान्यता प्राप्त है। जैसे- कुछ घरेलू हिंसा कानूनों में महिलाओं के 'घरेलू श्रम' को संपत्ति अधिकार या वैवाहिक संपत्ति में योगदान के रूप में माना गया है। पेंशन, बीमा और सामाजिक सुरक्षा लाभों में घरेलू काम को आधार माना जा सकता है। भारत में भी भविष्य में इस दिशा में कानून बनाए जा सकते हैं ताकि घरेलू श्रम की वैधता स्वीकार की जा सके।

6. **सामाजिक जागरूकता-** असली परिवर्तन सामाजिक धारणा बदलने से ही संभव है। मीडिया, फिल्म, टीवी कार्यक्रमों, और सोशल मीडिया के माध्यम से घरेलू श्रम की गरिमा को बढ़ावा दिया जाए। घरेलू काम को केवल 'महिलाओं का काम' कहने वाली सोच को चुनौती दी जाए।

7. **टेक्नोलॉजी और सेवा क्षेत्र का विकास -** टेक्नोलॉजी घरेलू काम को आसान और समय-बचत वाला बनाती है। रसोई उपकरण, सफाई मशीनें, वॉशिंग मशीन, रोबोटिक वैक्यूम, आदि जैसे साधन घरेलू काम की कठिनाई कम करते हैं। फूड डिलीवरी, ऑनलाइन ग्रोसरी, होम क्लीनिंग और चाइल्ड-केयर जैसी सेवाओं का प्रसार घरेलू कार्य के बोझ को कम करता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर घरेलू कर्मियों की सेवाओं को श्रम पहचान मिलती है।

7.9 सारांश:

घरेलू कार्य समाज की सबसे महत्वपूर्ण और अनिवार्य गतिविधियों में से एक है, लेकिन इसकी पहचान और मूल्यांकन लंबे समय से उपेक्षित रहा है। यह वह श्रम है जो परिवार और समाज को बांधे रखता है। यह बच्चों

को स्वस्थ वातावरण, बुजुर्गों की सुरक्षा सुनिश्चित और समाज की श्रमिक शक्ति को पुनरुत्पादित करता है। फिर भी, घरेलू कार्य को 'काम' नहीं माना जाता है। अतः घरेलू कार्य को सामाजिक, आर्थिक और कानूनी मान्यता देना आवश्यक है। घरेलू कार्यों में पुरुषों की भागीदारी भी समान रूप से जरूरी है। आधुनिक समय में घरेलू कार्य को सिर्फ निजी जिम्मेदारी नहीं बल्कि सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में समझने की आवश्यकता है। घरेलू कार्य को सम्मान, मान्यता और समानता का दर्जा देना ही एक समतामूलक और संवेदनशील समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

7.10 निबंधनात्मक प्रश्न

1. घरेलू कार्य से आप क्या समझते हो? घरेलू कार्यों के प्रकारों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. घरेलू कार्य से सम्बंधित नारीवादी दृष्टिकोण एवं संवैधानिक प्रयासों की व्याख्या कीजिए।
3. घरेलू कार्यों से संबंधित समस्याओं की विस्तृत चर्चा कीजिए।

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आहूजा, राम, (2014)., " सामाजिक समस्याएँ" जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स।
- सिंह, योगेन्द्र, (2006)., "भारतीय समाज: संरचना एवं परिवर्तन" नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स।
- दुबे, एस. सी., (2001)., "आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन" नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट।
- मिश्रा, एस. एन., (1984). *रूरल डेवलपमेंट प्लानिंग: डिजाइन एंड मेथड*. नई दिल्ली: सातवाहन पब्लिकेशन्स।
- खान, एल. जे., (1969). *थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ सोशल प्लानिंग*. न्यूयॉर्क: रसेल सेज फाउंडेशन।
- अवाडे. (1980)., *ब्लॉक लेवल प्लानिंग*. हैदराबाद: अवाडे पब्लिकेशन्स।
- चक्रवर्ती, सुखमय, (1977). *डेवलपमेंट प्लानिंग: द इंडियन एक्सपीरियंस*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, उषा, (2008)., "भारतीय समाज में महिला की स्थिति" नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स।
- देसाई, नीरा, (2005), "भारतीय महिला आंदोलन" नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- भारत सरकार, (2019), "घरेलू कामगारों के लिए राष्ट्रीय नीति" (प्रारूप), नई दिल्ली, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय।

- कुलकर्णी, (1979). *सोशल पॉलिसी एंड सोशल डेवलपमेंट इन इंडिया*. नई दिल्ली: एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया।
- रेड्डी, वाई. वेणुगोपाल, (1979). *मल्टी लेवल प्लानिंग इन इंडिया*. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
- Oakley, A. (1974). *The sociology of housework*. Martin Robertson.
- Delphy, C., & Leonard, D. (1992). *Familiar exploitation: A new analysis of marriage in contemporary Western societies*. Polity Press.
- Mies, M. (1986). *Patriarchy and accumulation on a world scale: Women in the international division of labour*. Zed Books.

इकाई-08 **अदृश्य कार्य**

Invisible work

इकाई की रूपरेखा-

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 लिंग के सन्दर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा

8.3 भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में अदृश्य कार्य

8.4 अदृश्य कार्यों के मुख्य प्रकार

- 8.4.1 पारिवारिक अदृश्य कार्य
- 8.4.2 सामाजिक-सांस्कृतिक अदृश्य कार्य
- 8.4.3 आर्थिक अदृश्य कार्य
- 8.4.4 शैक्षिक अदृश्य कार्य
- 8.4.5 स्वास्थ्य संबंधी अदृश्य कार्य

8.5 अदृश्य कार्यों के कारण

- 8.5.1 समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति
- 8.5.2 रूढ़िगत मान्यताएँ
- 8.5.3 सामाजिक पिछड़ापन
- 8:5:4 अशिक्षा एवं भेदभावपूर्ण शिक्षा
- 8.5.5 धार्मिक कारण
- 8.5.6 भाग्यवादिता
- 8.5.7 अनुचित सामाजीकरण
- 8.5.8 लैंगिक भेदभाव

8.6 अदृश्य कार्यों के सामाजिक प्रभाव

- 8.6.1 महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव
- 8.6.2 महिलाओं की सामाजिक पहचान पर प्रभाव
- 8.6.3 महिलाओं के आत्मनिर्भरता के लिए बाधक
- 8.6.4 महिलाओं के `स्व` के निर्माण में बाधक
- 8.6.5 महिलाओं पर अतिरिक्त कार्य-बोझ

8.6.6 लैंगिक असमानता का पोषक
8.6.7 निर्णयन में महिलाओं की भागीदारी को सीमित करना
8.6.8 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अदृश्य रूप से योगदान
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 बोध प्रश्नों हेतु उत्तर-संकेत
8.10 निबंधात्मक अभ्यास प्रश्न
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री

8.0 प्रस्तावना (Introduction)-

लिंग और कार्य के संदर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा एक महत्वपूर्ण सामाजिक विषय है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों पर अदृश्य कार्यों के प्रत्यक्ष प्रभाव पाए गए हैं। अदृश्य कार्यों की प्रकृति और इनकी संरचना सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से तय होती है। लिंग और कार्य के अनेक शोध अध्ययनों से यह तथ्य प्राप्त होता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं के द्वारा अदृश्य कार्यों का सम्पादन अधिक किया जाता है। महिलाएं घरेलू और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में अदृश्य कार्यों को सम्पादित करती हैं। अदृश्य कार्यों में महिलाओं की भूमिका यद्यपि सभी काल-खण्डों, देश और संस्कृति में भिन्न भिन्न होती है किन्तु यह भी सत्य है कि सभी समाजों में अदृश्य कार्यों में महिलाओं की भूमिका सापेक्षिक रूप से अधिक पायी गई है। लैंगिक संवेदनशीलता और लैंगिक समानता के लिए अदृश्य कार्य बाधा के रूप में कार्य करते हैं। यह मुख्य रूप से लैंगिक पूर्वाग्रहों से प्रेरित होते हैं इसीलिए लैंगिक कार्य के संदर्भ में अदृश्य कार्यों के सामाजिक परिणाम अपने अधिकांश रूप में सकारात्मक और संगठनकारी नहीं होते हैं।

8.1 उद्देश्य (Objectives)-

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- लैंगिक संदर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- अदृश्य कार्य का अर्थ और इसकी परिभाषा समझ सकेंगे।
- भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में अदृश्य कार्य को समझ सकेंगे।
- अदृश्य कार्य के प्रमुख प्रकारों के विषय में जान सकेंगे।

- अदृश्य कार्यों के प्रमुख कारकों को समझ सकेंगे।
- लैंगिक संदर्भ में अदृश्य कार्य के सामाजिक प्रभाव को समझ सकेंगे।

8.2 लिंग के सन्दर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा (The Concept of Invisible Work in the Context of Gender)-

लैंगिक संदर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा को जानने से पहले यह जानना आवश्यक होगा कि कार्य किसे कहते हैं। समाजशास्त्रीय संबंध में कार्य किसी भी व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली ऐसी क्रिया को संदर्भित करता है, जिसके कुछ ना कुछ सामाजिक परिणाम अवश्य हों। लिंग एवं कार्य के संदर्भ में अदृश्य कार्यों का संबंध प्रत्यक्ष तौर पर महिलाओं से है।

अदृश्य कार्य का अर्थ (Meaning of Invisible Work)-

अदृश्य कार्य दो शब्दों से मिलकर बना है, इसमें पहला शब्द अदृश्य है, जिसका तात्पर्य छिपा हुआ, अस्पष्ट या न दिखाई देने वाला होता है। अंग्रेजी में अदृश्य का अर्थ Invisible (इनविजिबल) होता है, जिसका हिंदी में तात्पर्य है आखों से न देखा जा सकने वाला। अदृश्य कार्य में दूसरा शब्द `कार्य` अथवा Work है, कार्य का तात्पर्य है, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया गया शारीरिक अथवा मानसिक प्रयास, जिसके कुछ न कुछ सामाजिक परिणाम अवश्य हों। लैंगिक संदर्भ में अदृश्य कार्यों से तात्पर्य महिलाओं द्वारा किया जाने वाला ऐसा घरेलू, पारिवारिक अथवा सामाजिक कार्य जिनके सामाजिक परिणाम तो होते हैं, किंतु इन कार्यों के लिए उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता और न ही इन कार्यों में उनकी भूमिका को खुले तौर पर स्वीकार किया जाता है। अदृश्य कार्य सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से प्रेरित होते हैं अदृश्य कार्यों के संपादन को महिलाओं के नैतिक कर्तव्यों से जोड़ दिया जाता है।

अदृश्य कार्य की परिभाषा (Definition of Invisible Work)-

अदृश्य कार्यों को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, ''किसी व्यक्ति के संपादित किया जाने वाला ऐसा कार्य, जिसे प्रत्यक्ष तौर पर कम आंका जाये या अनदेखा किया जाये, लेकिन जिसके बिना पारिवारिक या सामाजिक व्यवस्था का सञ्चालन सुचारू रूप से हो पाना संभव न हो और जिसे कर्ता द्वारा अवैतनिक रूप से संपादित किया जाये, ऐसा कार्य अदृश्य कार्य कहा जायेगा। अदृश्य कार्यों के दृश्य सामाजिक परिणाम होते हैं।'' लिंग एवं कार्य के संबंध में अदृश्य कार्यों को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि "अदृश्य कार्य महिलाओं के द्वारा किए जाने वाले वे सामाजिक कार्य हैं, जिनके लिए न तो उन्हें कोई भुगतान किया जाता है, और ना ही इन कार्यों में उनकी भूमिका को खुले तौर पर स्वीकार किया जाता है, बल्कि अदृश्य कार्यों से महिलाओं का संबंध

सामाजिक-सांस्कृतिक और नैतिक रूप से जोड़ दिया जाता है। सभी अदृश्य कार्य परिवार एवं समाज की व्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। अदृश्य कार्यों के दृश्य सामाजिक परिणाम होते हैं।'' स्पष्ट है कि लैंगिक संदर्भ में अदृश्य कार्यों का संबंध महिलाओं द्वारा किए जाने वाले ऐसे कार्य से है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक रूप से प्रेरित होते हैं, और समाज एवं परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण होने के बाद भी इन कार्यों के लिए महिलाओं को कोई भुगतान नहीं किया जाता।

बोध-प्रश्न 1- अदृश्य कार्य से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

बोध-प्रश्न 2- अदृश्य कार्य का अर्थ और इसकी परिभाषा लिखिए।

.....

.....

.....

.....

8.3 भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में अदृश्य कार्य (Invisible Work in the Socio-Cultural Context of Indian Society)-

भारतीय समाज की संस्कृति पितृसत्तात्मक है, इसके सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में पितृसत्ता की जड़ें बहुत गहरी है। यद्यपि अदृश्य कार्यों का संबंध महिला एवं पुरुष दोनों ही वर्गों से हो सकता है, किंतु जब लैंगिक परिप्रेक्ष्य में अदृश्य कार्यों की बात की जाती है, तब इसका संबंध केवल महिलाओं से होता है। पूर्व में विवेचन किया जा चुका है कि महिलाओं ऐसे कार्यों को अदृश्य कार्यों की श्रेणी में गिना जा सकता है, जिन कार्यों के लिए उन्हें किसी भी तरीके का आर्थिक मूल्य नहीं दिया जाता या उसका भुगतान नहीं किया जाता है। परंपरागत भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिक भूमिकाओं का विभाजन करते हुए पुरुषों को परिवार के आर्थिक स्रोत का प्रमुख साधन माना गया, जबकि महिलाओं को घर के भीतर बच्चों एवं परिवार के देखभाल का उत्तरदायित्व दिया गया। इस प्रकार पुरुषों के अर्थोपार्जन संबंधी कार्यों का महत्त्व समाज में सापेक्षिक रूप से अधिक आंका गया, जबकि महिलाओं से संबंधित कार्यों को अपेक्षाकृत कमतर आंका गया। सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों के

निहितार्थ भी महिलाओं से संबंधित कार्यों को उनके नैतिक कर्तव्यों से जोड़ देते हैं, जिससे महिलाएं अदृश्य कार्यों के लिए प्रोत्साहित होती रही है।

भारत के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2019-21) के अनुसार, वर्ष 2019 में श्रमशक्ति में नहीं शामिल होने वाली अर्थात घरेलू महिलाओं ने प्रतिदिन लगभग 7.5 घंटे और कामकाजी महिलाओं ने औसतन लगभग 5.8 घंटे प्रतिदिन अवैतनिक घरेलू कार्य किये, जबकि बेरोजगार पुरुषों ने दिन के औसतन 3.5 घंटे तथा कार्यरत पुरुषों ने के दिन के औसतन 2.7 घंटे ही घरेलू कार्यों में व्यतीत किये। परंपरागत रूप से भारतीय महिलाओं में आर्थिक आत्मनिर्भरता की कमी, शैक्षिक अवसरों की कमी पायी जाती रही है, जो उन्हें पुरुषों पर निर्भर बनाती है, यह सभी घटनाएँ महिलाओं को घरेलू कार्यों के लिए मजबूर करती है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में अपेक्षाकृत महिलाओं से नैतिक अपेक्षाएं अधिक होती है, समाज महिलाओं से घरेलू और परिवार की देखभाल संबंधी अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उम्मीद रखता है। इस प्रकार भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में तुलनात्मक रूप से महिलाओं के हिस्से में अदृश्य कार्य अधिक आता है। अदृश्य कार्यों को नैतिकता के दृष्टिकोण से उचित ठहराया जाता है, इससे महिलाएं उचित और अनुचित के भंवर में फंसकर अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में अदृश्य कार्यों के लिये अपना योगदान देती रहती है।

8.4 अदृश्य कार्य के मुख्य प्रकार (Major Types of Invisible Work)-

लिंग संवेदनशीलता एवं लिंग तथा कार्यों के संदर्भ में अदृश्य कार्यों को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है-

8.4.1 पारिवारिक अदृश्य कार्य (Family Invisible Work)-

महिलाओं के द्वारा जितने भी प्रकार के अदृश्य कार्य किए जाते हैं, उसमें सबसे बड़ा हिस्सा पारिवारिक रूप से किये जाने वाले अदृश्य कार्यों को जाता है। महिलाओं के द्वारा पारिवारिक रूप से किए जाने वाले अदृश्य कार्यों में वे सभी कार्य सम्मिलित हैं, जो उनके द्वारा नैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से प्रेरित होकर परिवार के भीतर अनौपचारिक रूप से संपादित किए जाते हैं। इन कार्यों को समाज महिला नैतिक कर्तव्यों में समझ लेता है और इन कार्यों को अक्सर काम या कार्य के रूप में प्रशंसित नहीं किया जाता। जैसे शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक श्रम, बच्चों एवं बुजुर्गों की देखभाल, पारिवारिक योजनाओं एवं कार्यों का समन्वय एवं प्रबंधन, घर की देखभाल, सदस्यों के लिए भोजन जीवनशैली से संबंधित अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य आदि। समाज कामकाजी महिलाओं से भी इन सभी कार्यों की अपेक्षा रखता है, जो उन्हें दोहरी भूमिका में उलझा देते हैं। कई बार घरेलू एवं कामकाजी दोनों ही महिलाओं मे ऐसे कार्यों की वजह से मानसिक तनाव, थकान, चिड़चिड़ाहट एवं अशांति उत्पन्न

हो जाती है। इस प्रकार पारिवारिक रूप से किये जाने वाले अदृश्य कार्यों का महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

8.4.2 सामाजिक-सांस्कृतिक अदृश्य कार्य (Socio-Cultural Invisible Work)-

महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले अदृश्य कार्यों में कई कार्य ऐसे होते हैं जो सामाजिक अपेक्षाओं, सांस्कृतिक मानदण्डों एवं मूल्यों द्वारा प्रेरित होते हैं। जैसे- घरेलू या सामुदायिक रूप से सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, नैतिकता के दृष्टिकोण से पास-पड़ोस, गांव, समुदाय आदि से संबंधित व्यक्तियों की देखभाल एवं उपचार की व्यवस्था करना, किंतु इन सभी कार्यों के लिए किसी भी प्रकार का आर्थिक मूल्य न प्राप्त कर पाना। इस प्रकार के कार्य सामाजिक-सांस्कृतिक आदर्शों से प्रेरित होकर अवैतनिक रूप से महिलाओं के द्वारा संपादित किए जाते हैं, जिनका आधार नैतिकता, मूल्य एवं आदर्श होते हैं इन सभी प्रकार के कार्यों को सामाजिक सांस्कृतिक अदृश्य कार्यों की श्रेणी में समझा जा सकता है।

8.4.3 आर्थिक अदृश्य कार्य (Economic Invisible Work)-

अनेक प्रकार के अदृश्य कार्यों में महिलाओं के द्वारा ऐसे बहुत से कार्य किये जाते हैं, जो आर्थिक रूप से अदृश्य कार्यों में आते हैं। ऐसा पाया गया है एक ही कार्य के लिए महिलाओं एवं पुरुषों को असमान वेतन दिया जाता है। एक ही प्रकृति के कार्य के लिये महिलाओं को मिलने वाला वेतन पुरुषों को मिलने वाले वेतन की तुलना में, अपेक्षाकृत कम होता है। संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा वर्ष 1976 में `समान पारिश्रमिक आधिनियम` बना कर लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया गया, वर्तमान में वर्ष 2019 से `समान पारिश्रमिक अधिनियम` की जगह `वेतन संहिता 2019` लागू है। घरेलू कामगारों को उनकी क्षमता के मुकाबले उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता, इसके साथ ही आधिकारिक रूप से उन्हें अवकाश भी देय नहीं होता। इन सभी कार्यों को लैंगिक रूप से निर्धारित किए गए कार्यों के अंतर्गत, पारिवारिक रूप से किये जाने वाले अवैतनिक कार्यों से भिन्न श्रेणी के आर्थिक अदृश्य कार्यों में सम्मिलित किया जा सकता है। आर्थिक रूप से अदृश्य कार्यों में महिलाएं अवैतनिक कार्य करती हैं, जिनसे सकल राष्ट्रीय आय और आर्थिक मानदंडों पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता। कई आर्थिक अदृश्य कार्यों में महिलाओं द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में किये गए ऐसे कार्य सम्मिलित होते हैं, जिनके लिए उन्हें अपेक्षाकृत कम भुगतान किया जाता है। उनके वेतन, भत्ते और अन्य सुविधाओं में भी कटौती की जाती है। आर्थिक रूप से अदृश्य कार्यों में कई बार अपने कार्यस्थल पर महिलाओं से उनकी परंपरागत और नैतिक भूमिका से जोड़ते हुए ऐसे कार्यों की अपेक्षा की जाती है, जो प्रत्यक्ष रूप से उनके कार्यस्थल के कर्तव्यों में सम्मिलित नहीं होते। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में अदृश्य कार्यों के कारण महिलाओं के जीवन में कठिन श्रम करने के बावजूद भी सामाजिक असुरक्षा का भाव बना रहता है।

8.4.4 शैक्षिक अदृश्य कार्य (Educational Invisible Work)-

महिलाओं द्वारा किए जा रहे ऐसे योगदान, जो शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे हैं और जिन कार्यों के लिये उन्हें या तो पारिश्रमिक नहीं मिल रहा है या फिर अपेक्षाकृत काफी कम पारिश्रमिक का भुगतान किया जा रहा है, ऐसे अदृश्य कार्यों को शैक्षिक अदृश्य कार्यों में सम्मिलित किया जा सकता है। जैसे-घर के भीतर बच्चों को ट्यूशन देना, कार्यस्थल पर अपेक्षाकृत कम पारिश्रमिक में कार्य जैसे, सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भर्ती किए गए शिक्षामित्रों को अपेक्षाकृत बहुत कम मानदेय का भुगतान किया जाता है। इसी प्रकार निजी क्षेत्र के स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाने वाले शिक्षकों का मानदेय अपेक्षाकृत कम होता है और कई बार तो उन्हें मिलने वाले मानदेय से स्वयं एवं परिवार के खर्चे निकालना भी कठिन हो जाता है। शैक्षिक रूप से किये जाने वाले इन अदृश्य कार्यों से जहाँ महिलाओं का निजी और सार्वजनिक जीवन कुप्रभावित होता है, वहीं समाज में शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

8.4.5 स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी अदृश्य कार्य (Invisible Work related to Health and Sanitation)-

घर के भीतर महिलाएं स्वच्छता एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धी मानकों का ध्यान रखती हैं। एक महिला घर के भीतर एक पोषणविद् विशेषज्ञों की तरह होती है, जो घर के बच्चों से लेकर वृद्धजनों तक के आहार-विहार के नियमों को समझकर उनके पोषण के आवश्यकता की पूर्ति करती है। संभवतः यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में महिलाओं को देवी अन्नपूर्णा अर्थात विश्व का भरण पोषण करने वाली देवी का एक स्वरुप माना जाता है। परंपरागत रूप से जजमानी व्यवस्था के तहत कुछ जातियों के लिए पोषण और स्वास्थ्य संबंधी कार्य निर्धारित किए गए थे। जिनका पालन आज भी ग्रामीण अंचल में किया जाता है। यह सभी कार्य वस्तुतः निःशुल्क और सेवा के बदले सेवा प्रदान करने वाले होते थे। इन कार्यों का संपादन वैसे तो महिलाओं एवं पुरुषों दोनों के द्वारा किया जाता था, किंतु इन कार्यों में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी। शिशु के जन्म के समय दाई के रूप में, नवजात शिशु एवं नवप्रसूता के स्वास्थ्य की देखभाल करना आदि परंपरागत रूप से गांव की अनुभवी महिलाओं के द्वारा संपादित किए जाते थे, यह सभी कार्य अधिकांश रूप में निःशुल्क होते थे।

बोध-प्रश्न 3- अदृश्य कार्यों के प्रमुख प्रकार कौन-कौन से हैं? नाम बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 अदृश्य कार्यों के प्रमुख कारण (Main Causes of Invisible Work)-

भारतीय समाज एवं संस्कृति मे लिंग एवं कार्य के क्षेत्र में संपादित किये जाने वाले अदृश्य कार्यों के कारक समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में छिपे होते हैं। इनमें से महिलाओं द्वारा संपादित किए जाने वाले अदृश्य कार्यों के प्रमुख कारकों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

8.5.1 समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति (Patriarchal Nature of Society)-

महिलाओं द्वारा संपादित किए जाने वाले अदृश्य कारकों में एक बड़ा कारक भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति है। परंपरागत रूप से भारतीय समाज में महिलाओं को घरेलू कार्यों से संबंधित माना जाता रहा है। महिलाओं द्वारा घर के भीतर किए जाने वाला श्रम अवैतनिक होता है। पितृसत्तात्मक समाज में आर्थिक आय के प्रमुख स्रोत के रूप में पुरुष वर्ग काम करता है और महिलाएं घरेलू प्रबंधन से संबंधित होती हैं। यद्यपि यह दोनों कार्य गृहस्थी एवं सामाजिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, किंतु समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति के चलते महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य को कमतर आंक लिया जाता है।

8.5.2 रूढ़िगत मान्यताएँ (Traditional Beliefs)-

समाज की रूढ़िगत मान्यताओं के चलते महिलाओं द्वारा किए जा रहे अदृश्य कार्यों को मजबूती मिलती हैं। आधुनिक समय के बावजूद जहाँ महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सशक्त भागीदारी दे रही हैं, इन सभी के बावजूद भी परंपरागत रूप से महिलाओं के लिए निर्धारित उनके अदृश्य कार्यों में बहुत बड़ा अंतर नहीं आया है। रूढ़िगत मान्यताएँ अदृश्य कार्यों को बल देती है।

8.5.3 सामाजिक पिछड़ापन (Social Backwardness)-

जिन क्षेत्रों में सामाजिक पिछड़ापन पाया जाता है, वहाँ की महिलाएं अदृश्य कार्यों के बोझ के तले दबी हुई हैं। सामाजिक पिछड़ापन के कारण अधिकांश अभिभावक और घर के सदस्य महिलाओं से परंपरागत रूप से निर्धारित अदृश्य कार्यों की अपेक्षा रखते हैं। इस प्रकार सामाजिक पिछड़ापन अदृश्य कार्यों का प्रमुख कारण है।

8.5.4 अशिक्षा एवं भेदभावपूर्ण शिक्षा (Illiteracy and Discriminatory Education)-

अशिक्षित या कम शिक्षित समाज में लोगों का लगाव अपनी परंपरागत रूढ़ियों, मान्यताओं और भूमिकाओं से भिन्न नहीं हो पाता ऐसे लोग सामाजिक परिवर्तन को अपनाने के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर पाते। महिलाओं के द्वारा संपादित किए जाने वाले परंपरागत रूप से अदृश्य कार्यों के प्रति ऐसा समाज सकारात्मक परिवर्तन का भाव नहीं ला पाता। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली भी महिलाओं को अदृश्य कार्यों के लिये प्रेरित करती है। जैसे लड़कियों को किचन और घर के काम करने चाहिये और लड़कों को बाजार के बाजार के काम।

8.5.5 धार्मिक कारण (Religious Causes)-

कई धर्मों की मान्यताओं में महिलाओं के लिए भेदभाव का रवैया पाया गया है। विभिन्न धर्मों और पंथों के धर्मग्रंथों में महिलाओं की प्रस्थिति और भूमिका को यदा-कदा अधीनतापूर्ण रूप में विवेचित किया गया है। स्त्री सेवा, त्याग और समर्पण की प्रतिबिंब है और यह सभी कार्य उसके लिए पवित्र कर्तव्य हैं। ऐसी मान्यताएं अदृश्य कार्यों को धार्मिक आस्था से जोड़ देती हैं।

8.5.6 भाग्यवादिता (Fatalism)-

पीढ़ी दर पीढ़ी गलत शिक्षण और सामाजीकरण के द्वारा महिलाओं में अदृश्य कार्यों के प्रति भाग्यवादिता का जन्म हो जाता है। महिलाओं को ये लगने लगता है कि जो भी कार्य उनके लिए परंपरागत रूप से निर्धारित किए गए हैं, उनका पालन करना चाहिए क्योंकि यह सभी उत्तरदायित्व उनके स्त्री होने साथ ही उनके भाग्य से जुड़ गए हैं।

8.5.7 अनुचित सामाजीकरण (Inapproproate Socialization)-

परिवार में लैंगिक पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर यदि संतानों का सामाजीकरण किया जाए तो भावी पीढ़ी में ऐसी समझ का विकास हो जाता है कि अदृश्य कार्यों के प्रति लड़कियों एवं महिलाओं की जिम्मेदारी है। जैसे, लड़कियों और लड़कों में सामाजीकरण के मूल्यों का समावेशन उनकी लैंगिक भूमिकाओं को ध्यान में रखकर करने से घर में संतानों का गलत सामाजीकरण होता है, इसके बाद घर के सदस्य ऐसा मानने लगते हैं कि घर के अंदर के सारे कार्य महिलाओं के प्राथमिक उत्तरदायित्वों में आते हैं। इस प्रकार अनुचित सामाजीकरण के द्वारा महिलाओं के लिए निर्धारित अदृश्य कार्यों को अनावश्यक बल मिलता है।

8.5.8 लैंगिक भेदभाव (Gender Discrimination)-

भारत समेत वैश्विक परिदृश्य में भी लैंगिक भेदभाव से ग्रस्त विचारधारा के कारण महिलाओं को अदृश्य कार्य की तरफ प्रेरित करता है। आधुनिक समय में महिलाओं ने कई नवीन भूमिकाओं को स्वीकार किया है, किंतु उनकी परंपरागत अदृश्य कार्य की भूमिकाओं में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है, इसका मुख्य कारण समाज का लैंगिक भेदभाव से ग्रसित रवैया रहा है।

8.6 अदृश्य कार्य के सामाजिक प्रभाव (Social Impacts of Invisible Work)-

लैंगिक परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के द्वारा जिन अदृश्य कार्यों को संपादित किया जाता है, अच्छा उसके कुछ ना कुछ सामाजिक परिणाम अवश्य होते हैं। महिलाओं के द्वारा संपादित किए जा रहे , घरेलू देखभाल संबंधी कार्य, शारीरिक एवं मानसिक श्रम, भावनात्मक श्रम, सामाजिक सांस्कृतिक एवं संरक्षित क्षेत्रों में अदृश्य योगदान, आर्थिक क्षेत्रों में किया जाने वाला अदृश्य कार्य आदि महिलाओं के निजी एवं सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं।

बोध-प्रश्न 4- अदृश्य कार्यों के लिए उत्तरदायी किन्ही दो कारणों के विषय में संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

.....

8.6.1 महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects on Women`s Health)-

अदृश्य कार्यों का महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, अदृश्य कार्य महिलाओं के ऊपर अतिरिक्त बोझ की तरह होते हैं, जिन्हें उठाते-उठाते महिला का स्वास्थ्य खराब होता है। कई शोध अध्ययनों (नाय एवं हाफमैन 1998, टेलर 2003, डॉ, सुषमा मेहरोत्रा 2005 एवं शकीला खान एवं डॉ. रानी दुबे आदि) से यह प्रमाणित होता है कि अतिरिक्त घरेलू कार्य महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के कई पक्षों पर बहुत विपरीत प्रभाव डालते हैं। इसके परिणाम स्वरुप महिलाओं में सामाजिक अलगाव की भावना जन्म लेती है, उनमें चिंता, अवसाद और तनाव बढ़ता है।

8.6.2 महिलाओं की सामाजिक-पहचान पर प्रभाव (Effects on Women`s Social Identity)-

अदृश्य कार्यों के सामाजिक प्रभाव में यह प्रमुख है कि इससे महिलाओं की सामाजिक पहचान कुप्रभावित होती है। कठिन शारीरिक एवं मानसिक श्रम के बावजूद भी महिला को परिवार एवं समाज में वांछित सम्मान एवं पहचान नहीं मिल पाती और उनके योगदान को समाज अनदेखा कर देता है।

8.6.3 महिलाओं के आत्मनिर्भरता के लिए बाधक (Obstacles to Women`s Self-Reliance)-

कई बार ऐसा पाया जाता है कि महिला स्वयं अथवा उसके परिवार वालों के हस्तक्षेप से अपने अदृश्य और घरेलू कार्यों की वजह से आत्मनिर्भरता के लिए नहीं सोच पाती। घर परिवार और बच्चों की जिम्मेदारी उन्हें ऐसा करने से रोक देती है। इस प्रकार अदृश्य कार्य महिलाओं की आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में बाधक होते हैं।

8.6.4 महिलाओं के `स्व` के निर्माण में बाधक (Obstacles to Construction of Women`s 'Self')-

अदृश्य कार्यों की सामाजिक पहचान भी लगभग अदृश्य होती है। समाज इन कार्यों को खुले तौर पर स्वीकार नहीं करता। महिलाओं द्वारा अदृश्य कार्यों में किए जाने वाले योगदान को उसकी नैतिक कर्तव्य के रुप से जोड़कर देखा जाता है। इससे महिलाओं के `स्व` अर्थात् व्यक्तित्व के निर्माण में बाधा पहुंचती है और उनका आत्मविश्वास कमजोर होता है।

8.6.5 महिलाओं पर अतिरिक्त कार्य-बोझ (Additional Workload on Womens)-

अदृश्य कार्यों के द्वारा महिलाओं का जो भी योगदान परिवार एवं समाज को दिया जाता है वह सभी महिलाओं पर अतिरिक्त कार्य का दबाव डालते हैं। इन कार्यों की स्पष्ट पहचान भी कठिन होती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट बताती है कि युवा भारतीय पेशेवर महिलाएं प्रति-सप्ताह औसतन 55 घंटे कार्य करती हैं। इसका अर्थ है कि बाह्य एवं घर की आतंरिक जिम्मेदारियों के कारण उन्हें केवन 7-10 घंटे का ही समय मिल पाता है।

8.6.6 लैंगिक असमानता का पोषक (Nurturer of Gender Inequality)-

महिलाओं के द्वारा संपादित किए जाने वाले अदृश्य कार्यों को लैंगिक असमानता का पोषक माना जा सकता है। महिलाएं और लड़कियां अदृश्य कार्यों को घर परिवार में देख-देख कर ही सीख लेती हैं और वे ऐसा स्वीकार कर लेते हैं, ये सभी कार्य करना उनका कर्तव्य है।

8.6.7 निर्णयन में महिलाओं की भागीदारी को सीमित करना (Limiting Women`s Participation in Decision-Making)-

अदृश्य कार्यों का महिलाओं के लिए एक और बाधक यह प्रभाव है कि महिलाओं के अदृश्य कार्य के योगदान को समाज कौशल युक्त नहीं मानता, इसलिए महिलाओं को पारिवारिक एवं सामाजिक निर्णय में भागीदारी का अवसर बहुत कम प्राप्त हो पाता है। अदृश्य कार्य, पारिवारिक निर्णयन में महिलाओं की भागीदारी को सीमित करता है।

8.6.8 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अदृश्य रूप से योगदान (Invisible Contribution to the National Economy)-

महिलाओं द्वारा किया जाने वाला अदृश्य कार्य अवैतनिक होता है इसलिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में इन कार्यों को कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं होता, लेकिन घरेलू और राष्ट्रीय बचत में या समस्त अदृश्य कार्य अदृश्य रूप से योगदान देते हैं। जब कोई महिला घर के सारे कार्यों का बोझ उठाती है, तो वह अदृश्य रूप से परिवार की बचत योजना में अपनी चुपचाप भूमिका निभा रही होती है, जिससे परिवार और समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

बोध-प्रश्न 5- अदृश्य कार्य महिलाओं के स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करता है? संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

बोध-प्रश्न 6- अदृश्य कार्य महिलाओं की सामाजिक पहचान पर क्या प्रभाव डालता है? संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

8.7 सारांश (Conclusion)

उपरोक्त विवेचन के आधार पर सार रूप में कहा जा सकता है कि लिंग एवं कार्य के संदर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा का संबंध प्रत्यक्ष तौर पर महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अदृश्य योगदान से है। इन अदृश्य कार्यों के लिए महिलाओं को किसी प्रकार का कोई पारिश्रमिक देय नहीं होता। महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अदृश्य

कार्यों का आधार नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक होता है। प्रस्तुत इकाई में अदृश्य कार्यों की अवधारणा, इसके अर्थ एवं इसकी परिभाषा द्वारा इसे समझने और समझाने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में अदृश्य कार्य का क्या तात्पर्य है, इसे बताने का प्रयत्न किया गया है। लैंगिक परिप्रेक्ष्य में अदृश्य कार्यों के प्रमुख प्रकारों का विवेचन किया गया है। महिलाओं द्वारा संपादित किए जाने वाले अदृश्य कार्यों के पीछे छिपे हुए प्रमुख सामाजिक कारणों की विवेचना की गई है। इसके साथ ही साथ यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि अदृश्य कार्यों के संभावित सामाजिक परिणाम क्या हो सकते हैं? इस प्रकार यह पूरी इकाई लिंग और कार्य के संबंध में महिलाओं द्वारा किए जा रहे हैं अदृश्य कार्यों से संबंधित है, जिसमें अदृश्य कार्यों के विविध पक्षों की विवेचना की गयी है।

8.8 शब्दावली (Glossary)-

- **अदृश्य कार्य (Invisible Work)-** किसी व्यक्ति के संपादित किया जाने वाला ऐसा कार्य, जिसे प्रत्यक्ष तौर पर कम आंका जाये या अनदेखा किया जाये, लेकिन जिसके बिना पारिवारिक या सामाजिक व्यवस्था का सञ्चालन सुचारू रूप से हो पाना संभव न हो और जिसे कर्ता द्वारा अवैतनिक रूप से संपादित किया जाये, ऐसा कार्य अदृश्य कार्य कहा जायेगा। अदृश्य कार्यों के दृश्य सामाजिक परिणाम होते हैं।
- **स्व (Self)-** समाजशास्त्रीय भाषा में स्व को दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व कहा जा सकता है, जिसका निर्माण सामाजिक रूप से व्यक्ति एवं समाज की सक्रिय अंतःक्रिया के बाद होता है, व्यक्तित्व के निर्माण में व्यक्ति की बैद्धिकता के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण, प्रतीक, चिन्ह, भूमिका ग्रहण आदि तत्व प्रभावित करते हैं।
- **निर्णयन (Decision Making)-** निर्णयन एक वैक्तिक सह सामाजिक प्रक्रिया है, किसी विशेष परिस्थिति, समस्या या विषय पर निर्णय करने के लिए कर्ता के पास एक या एक से अधिक विकल्प मौजूद होते हैं। उपलब्ध विकल्पों में से कर्ता आवश्यकता के अनुसार सर्वोत्तम विकल्प का चयन करता है।
- **पितृसत्ता (Patriarchy)-** पितृसत्ता को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में जाना जा सकता है, जिसमें पुरुषों के सामाजिक अधिकार महिलाओं की तुलना में अधिक होते हैं। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों का परिवार, समाज एवं संपत्ति पर प्राथमिक अधिकार होता है। कई बार पितृसत्तात्मक विचारों के कारण महिलाएं घर के भीतर एवं बाहर शोषण का शिकार होती हैं।

- ❖ **भाग्यवादिता (Fatalism)-** भाग्यवादिता एक ऐसी अवस्था है, जहाँ व्यक्ति यह सोचने लगता है, कि जो कुछ भी हो रहा है, वह पूर्वनिर्धारित है, वह स्वयं न इसे रोक सकता है और न ही परिवर्तित कर सकता है।
- ❖ **लैंगिक असमानता (Gender Discrimination)-** लैंगिक असमानता ऐसी स्थिति है जब किसी व्यक्ति के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव होता है और उसे अन्य सापेक्ष लोगों की तुलना में समान अधिकार, संसाधन और अवसर प्राप्त नहीं होते। लैंगिक असमानता भेदभावपूर्ण व्यवहार, पूर्वाग्रह एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होती है।

8.9 बोध प्रश्नों हेतु उत्तर-संकेत (Answer Hints for Comprehension Questions)-

- ☞ बोध प्रश्न 1- देखें - 8.2 को।
- ☞ बोध प्रश्न 2- देखें - 8.2।
- ☞ बोध प्रश्न 3- देखें - 8.4 से 8.4.5 तक।
- ☞ बोध प्रश्न 4- देखें - 8.5 से 8.5.7 तक।
- ☞ बोध प्रश्न 5- देखें - 8.5.1।
- ☞ बोध प्रश्न 6- देखें - 8.5.2

8.10 निबंधात्मक प्रश्न अभ्यास (Essay Practice Questions)-

- ❖ लैंगिक सन्दर्भ में अदृश्य कार्य की अवधारणा से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख प्रकारों का विवेचन कीजिये।
- ❖ अदृश्य कार्य का अर्थ और इसकी परिभाषा बताते हुए अदृश्य कार्य के प्रमुख कारकों की व्याख्या कीजिये।
- ❖ लैंगिक परिप्रेक्ष्य में अदृश्य कार्यों के सामाजिक परिणामों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये।
- ❖ अदृश्य कार्य महिलाओं के जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं? वर्णन कीजिये।

8.11 सन्दर्भ सूची (References)-

- ➢ भारतीय राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (आंकड़े) 2019-21
- ➢ इलिच, आई (1982)- पन्थिओन पब्लिकेशन, न्यूयार्क

- कुमारी, डॉ. पिंकी एवं सहनी श्री सत्यनारायण (2019)- भारत में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के साथ लैंगिक असमानता: एक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड रिसर्च, आईएसएसएन-2394-7500, वर्ष-2019, पृष्ठ संख्या- 102-105,
- https://doi.org/10.1080/23311886.2025.2549473
- Akeel Naveed Raja, Dr. Ganesh Digal. (2025). Invisible labour with Visible effect: The Impact of Unpaid Work on Women Health and Wellbeing. South Eastern European Journal of Public Health, 1711–1724. https://doi.org/10.70135/seejph.vi.3514
- https://bkwomenwing.com/wpcontent/uploads/2016/04/VALUE_EDUCATION-Hindi.pdf

8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री (Helpful Reading Materials)-

3. सिंह, डॉ. अमिता (2015), लिंग एवं समाज, प्रथम संस्करण, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली-7
4. कैरोलिन क्रियाडो पेरेज़ (2020), इनविजिबल वीमेन, विंटेज पब्लिशर्स, पेंगुइन रैंडम हाउस,
5. देवन, रितु, इनविजिबल वर्क इनविजिबल वर्कर्स: दी सब इकोनॉमिक्स ऑफ़ अनपेड वर्क एंड पेड वर्क एक्शन रिसर्च ओन विमेंस अनपेड लेबर, सेण्टर फॉर डेवलपमेंट रिसर्च एंड एक्शन (यूएन वीमेन)।

इकाई-09 महिला: संगठित और असंगठित क्षेत्र
Women: Organized and Unorganized Sector

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका

9.4 आर्थिक प्रगति में महिलाओं का योगदान

9.5 संगठित क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएँ

9.6 संगठित क्षेत्र में महिलाओं के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ

9.7 प्रमुख संगठित क्षेत्र

9.8 असंगठित क्षेत्र की विशेषताएँ

9.9 प्रमुख असंगठित क्षेत्र

9.10 असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की चुनौतियाँ

9.11 महिलाओं के लिए शासकीय योजनाएँ एवं नीतियाँ

9.12 सारांश

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

9.14 संदर्भ ग्रंथ

9.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

महिला श्रमिकों की भागीदारी संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में समाज और अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को निश्चित वेतन, अवकाश, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ तथा श्रम कानूनों का संरक्षण प्राप्त होता है। यहाँ उनकी कार्य परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत सुरक्षित और स्थिर होती हैं। इसके विपरीत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएँ असुरक्षित वातावरण, अनियमित आय, लंबे कार्य घंटे और सामाजिक सुरक्षा के अभाव जैसी चुनौतियों का सामना करती हैं। भारत में अधिकांश महिलाएँ असंगठित क्षेत्र जैसे कृषि, घरेलू काम, हस्तशिल्प, छोटे उद्योग और निर्माण कार्यों में संलग्न हैं। इन क्षेत्रों में उनका योगदान विशाल होते हुए भी अक्सर अदृश्य और कम आंका जाता है।

महिलाओं की स्थिति का अध्ययन संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में आवश्यक है क्योंकि यह न केवल लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि आर्थिक विकास की गति को भी प्रभावित करता है। महिलाओं को समान अवसर, उचित वेतन और सुरक्षित कार्य वातावरण प्रदान करना समाज की प्रगति के लिए अनिवार्य है। अतः संगठित और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका और चुनौतियों का विश्लेषण सामाजिक कार्य और नीति निर्माण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

9.2 उद्देश्य

शिक्षार्थियों इस इकाई के अध्ययन से आप-

1 भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका, आर्थिक प्रगति में महिलाओं का योगदान के विषय में जान सकेंगे।

2 संगठित क्षेत्र में महिलाओं के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ, प्रमुख संगठित क्षेत्र, असंगठित क्षेत्र की विशेषताएँ के विषय में जान सकेंगे।

3 असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की चुनौतियाँ, प्रमुख असंगठित क्षेत्र, शासकीय योजनाएँ एवं नीतियाँ के विषय में जान सकेंगे।

9.3 भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका

भारतीय समाज में महिलाओं का योगदान प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। वे परिवार का आधार होने के साथ-साथ संस्कृति को भी सहेजती हैं। रानी लक्ष्मीबाई और सरोजिनी नायडू जैसी महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में नेतृत्व किया। वर्तमान में, शिक्षा और सामाजिक आंदोलनों के कारण, महिलाएं राजनीति, साहित्य, विज्ञान और खेल जैसे क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं। वे शिक्षिका, डॉक्टर, इंजीनियर और वैज्ञानिक बनकर समाज को नई दिशा दे रही हैं। गांवों में महिलाएं कृषि में और शहरों में बैंकिंग और आईटी जैसे क्षेत्रों में योगदान दे रही हैं। महिलाओं ने परिवार की जिम्मेदारी के साथ-साथ देश की प्रगति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे समाज में समानता, न्याय और विकास को बढ़ावा मिला है। इस प्रकार, भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका लगातार विकसित हो रही है, और वे राष्ट्र के विकास में समान रूप से योगदान दे रही हैं।

9.4 आर्थिक प्रगति में महिलाओं का योगदान

भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे न केवल परिवार और समाज का आधार हैं, अपितु राष्ट्र की उन्नति का भी मेरुदंड हैं। प्राचीन काल से ही महिलाएं कृषि, हस्तकला और घरेलू उद्योगों में सक्रिय रूप से भाग लेती रही हैं। वर्तमान में वे शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, सूचना प्रौद्योगिकी और

व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में भी अग्रसर हैं। इस प्रकार, महिलाओं का परिश्रम और सक्रियता भारत के आर्थिक विकास में विविध प्रकार से सहायक सिद्ध होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं प्रायः कृषि कार्यों में संलग्न रहती हैं। वे खेतों में बीज बोने, निराई करने, फसल काटने और पशुधन की देखभाल करने जैसे कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त, वे डेयरी, सब्जी उत्पादन और कुटीर उद्योगों के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करती हैं। यद्यपि, उनके श्रम को प्रायः उचित सम्मान नहीं मिलता और उन्हें न्यूनतम मजदूरी भी प्राप्त नहीं होती। तथापि, उनका योगदान कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

शहरी क्षेत्रों में महिलाएं सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रों में कार्यरत हैं। सरकारी क्षेत्र में वे शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग और सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं में कार्यरत हैं। यहां उन्हें नियमित रोजगार, निश्चित वेतन और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाएं शिक्षिका और अनुसंधानकर्ता बनकर समाज को प्रबुद्ध बनाने में सहयोग करती हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में वे चिकित्सक, नर्स और स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में लोगों की सेवा करती हैं। सूचना प्रौद्योगिकी और बैंकिंग जैसे नवीन क्षेत्रों में उनकी भागीदारी ने भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने में सहायता की है।

निजी क्षेत्र में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे घरेलू सहायिका, निर्माण श्रमिक और लघु कुटीर उद्योगों में कार्यरत हैं। यह क्षेत्र महिलाओं को स्व-रोजगार का अवसर तो प्रदान करता है, परन्तु यहां वेतन कम होता है और सामाजिक सुरक्षा का भी अभाव होता है। तथापि, निजी क्षेत्र में महिलाओं का श्रम शहरी जीवन और लघु उद्योगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

महिलाओं का योगदान केवल श्रम तक ही सीमित नहीं है, अपितु वे व्यवसाय और नेतृत्व में भी अपनी पहचान बना रही हैं। अनेक महिलाएं लघु एवं बड़े व्यवसाय प्रारंभ कर रही हैं और रोजगार सृजित कर रही हैं। स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से ग्रामीण महिलाएं संयुक्त रूप से बचत और ऋण प्राप्त करके छोटे-मोटे व्यवसाय चला रही हैं। इससे न केवल उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है, अपितु ग्रामीण विकास को भी प्रोत्साहन मिल रहा है।

9.5 संगठित क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएँ

1. औपचारिक रोजगार

संगठित क्षेत्र की सबसे खास बात यह है कि यहाँ नौकरियाँ पक्की होती हैं। कर्मचारियों को एक पद मिलता है, काम की जिम्मेदारी पता होती है और काम करने का समय भी निश्चित होता है। पक्की नौकरी होने से महिलाओं

को एक तरह की स्थिरता और सुरक्षा मिलती है, जिससे वे आगे की सोचकर कुछ योजनाएँ बना सकती हैं। इससे उन्हें इधर-उधर की अस्थायी और अनिश्चित नौकरियों से छुटकारा मिल जाता है। साथ ही, पक्की नौकरी होने से महिलाओं को समाज में इज्जत और आत्मविश्वास भी मिलता है।

2. संगठित क्षेत्र में कर्मचारियों को लिखित अनुबंध

संगठित क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को एक लिखित अनुबंध दिया जाता है, जिसमें उनके अधिकार और जिम्मेदारियां साफ तौर पर लिखी होती हैं। इस अनुबंध के जरिए नौकरी की अवधि, सैलरी, छुट्टियां और दूसरी सुविधाएं तय की जाती हैं। महिलाओं के लिए यह अनुबंध और भी जरूरी है, क्योंकि इससे उन्हें कानूनी सुरक्षा मिलती है और अगर उनके साथ कोई गलत व्यवहार होता है या भेदभाव किया जाता है तो वे अपने हक के लिए आवाज उठा सकती हैं। अनुबंध होने से नौकरी औपचारिक और सुरक्षित हो जाती है।

3. संगठित क्षेत्र में वेतन

संगठित क्षेत्र में सैलरी एक तो फिक्स होती है और हर महीने टाइम पर मिलती है। ऊपर से कई बार भत्ते भी मिल जाते हैं। औरतों के लिए तो ये बहुत अच्छी बात है, क्योंकि इससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है और वो अपने पैरों पर खड़ी हो पाती हैं। अब जहाँ असंगठित क्षेत्र में कुछ पता नहीं होता कि कब सैलरी मिलेगी और कितनी मिलेगी, वहीं संगठित क्षेत्र में औरतों को उनके काम के हिसाब से ठीक-ठाक पैसा मिल जाता है। इससे वो अपने परिवार की जरूरतें पूरी कर पाती हैं और उनकी लाइफस्टाइल भी सुधर जाती है।

4. संगठित क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा

संगठित क्षेत्र की एक और खास बात यह है कि इसमें सामाजिक सुरक्षा का ध्यान रखा जाता है। कर्मचारियों को यहाँ बीमा, पेंशन और मातृत्व लाभ जैसी सुविधाएँ मिलती हैं। साथ ही, उनके लिए चिकित्सा सुविधाएँ और कई तरह की सुरक्षा योजनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। महिलाओं के लिए यह क्षेत्र और भी फायदेमंद है, क्योंकि मातृत्व अवकाश और अच्छी स्वास्थ्य सुविधाएँ उन्हें नौकरी और परिवार दोनों को संभालने में मदद करती हैं। सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ महिलाओं को भविष्य के लिए निश्चिंत करती हैं और उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत और सामाजिक रूप से स्थिर बनाती हैं।

9.6 प्रमुख संगठित क्षेत्र

1. सरकारी नौकरियाँ

माना जाता है कि सरकारी नौकरियाँ, खासकर संगठित क्षेत्र में, महिलाओं के लिए सबसे स्थिर और सुरक्षित रोजगार का ज़रिया हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि यहाँ उन्हें एक तयशुदा वेतन, पेंशन, बीमा, मातृत्व अवकाश जैसे लाभ और अन्य सामाजिक सुरक्षा सुविधाएँ मिलती हैं। अब तो शिक्षक, डॉक्टर, प्रशासनिक सेवाओं, पुलिस और रेलवे जैसी नौकरियों में भी महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है। सरकारी नौकरियाँ न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से स्थिर बनाती हैं, बल्कि उन्हें समाज में सम्मान और आत्मनिर्भरता भी दिलाती हैं।

2. बैंकिंग क्षेत्र में रोजगार

बैंकिंग, महिलाओं के लिए संगठित रोजगार का एक खास ठिकाना है। यहां उन्हें कायदे के कॉन्ट्रैक्ट, बंधी बंधाई सैलरी और आगे बढ़ने के मौके मिलते हैं। बैंक में औरतें कैशियर, क्लर्क, अफसर और मैनेजर जैसे पदों पर काम कर रही हैं। इस फील्ड में काम करने की जगह आमतौर पर सुरक्षित मानी जाती है, और महिलाओं को पैसे से जुड़ी जानकारी और लीडरशिप के गुण सीखने का मौका मिलता है। बैंकिंग में औरतों की बढ़ती तादाद, तरक्की की राह पर एक अच्छा इशारा है।

3. सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में रोजगार

आजकल, भारत में आईटी सेक्टर महिलाओं के लिए नौकरी के मामले में सबसे तेजी से तरक्की करने वाले क्षेत्रों में से एक है। यहाँ पर महिलाएँ सॉफ्टवेयर इंजीनियर से लेकर डेटा एनालिस्ट, प्रोजेक्ट मैनेजर और डिज़ाइनर तक की भूमिकाएँ निभा रही हैं। आईटी कंपनियाँ महिलाओं को काम करने का सुविधाजनक माहौल, अच्छी सैलरी और करियर में आगे बढ़ने के मौके दे रही हैं। इस फील्ड में महिलाओं के आने से तकनीकी तरक्की और डिजिटल इंडिया जैसे अभियानों को और भी बढ़ावा मिला है। साथ ही, आईटी सेक्टर महिलाओं को दुनिया भर में मुकाबला करने का मौका भी दे रहा है।

4. शिक्षा के क्षेत्र में रोजगार

शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान हमेशा से ही अहम रहा है। वे प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा संस्थानों तक, हर जगह शिक्षक, प्रोफेसर और रिसर्चर के तौर पर काम कर रही हैं। शिक्षा का क्षेत्र महिलाओं को एक स्थिर नौकरी, सम्मान और समाज के लिए कुछ करने का मौका देता है। यहां उन्हें न केवल बच्चों और युवाओं को ज्ञान देने का अवसर मिलता है, बल्कि समाज में जागरूकता बढ़ाने में भी वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की मौजूदगी समाज के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के लिए बेहद जरूरी है।

5. स्वास्थ्य के क्षेत्र में रोजगार

स्वास्थ्य के क्षेत्र में, महिलाएँ डॉक्टर, नर्स, फार्मासिस्ट और स्वास्थ्यकर्मी बनकर सेवाएँ देती हैं। यह क्षेत्र महिलाओं को समाज की भलाई करने का मौका देता है। स्वास्थ्य क्षेत्र में नौकरी आमतौर पर स्थिर होती है, और महिलाओं को यहाँ सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ सम्मान भी मिलता है। गाँवों में, आशा कार्यकर्ता और आंगनवाड़ी सेविकाएँ महिला और बच्चों की सेहत को बेहतर बनाने में अहम योगदान देती हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिलाओं का शामिल होना समाज की तरक्की और खुशहाली के लिए बहुत ज़रूरी है।

9.7 संगठित क्षेत्र में महिलाओं के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ

1. लैंगिक असमानता

संगठित क्षेत्र में महिलाओं को अक्सर लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ता है। बराबर काम करने के बावजूद उन्हें पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है और तरक्की के अवसर भी सीमित होते हैं। कई बार महिलाओं को केवल उनकी लैंगिक पहचान की वजह से महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों से दूर रखा जाता है। यह असमानता उनके मनोबल को गिराती है और उन्हें अपनी पूरी क्षमता का इस्तेमाल करने से रोकती है। लैंगिक असमानता को खत्म करने के लिए कानून बनाए गए हैं, लेकिन वास्तविक रूप से इसका पालन अभी भी अधूरा है।[1]

2. ग्लास सीलिंग

"ग्लास सीलिंग" शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले 1986 में Hymowitz और Schellhardt ने Wall Street Journal में किया था। इस शब्द ने उन समस्याओं को उजागर किया जिनका सामना महिलाएँ व्यवसाय, प्रबंधन, शिक्षण और गैर-लाभकारी संस्थाओं जैसे अलग-अलग क्षेत्रों में उच्च पदों और बेहतर आय स्तर पाने की कोशिश में करती हैं।[1]

ग्लास सीलिंग एक ऐसा रूपक है जो यह दिखाता है कि महिलाएँ संगठित क्षेत्र में उच्च पदों तक पहुँचने में अनदेखी बाधाओं का सामना करती हैं। भले ही वे काबिल और सक्षम हों, लेकिन नेतृत्वकारी पदों पर पहुँचने में उन्हें मुश्किल होती है। प्रबंधकीय और निर्णय लेने वाले पदों पर पुरुषों का दबदबा ज्यादा है, जिससे महिलाओं को सीमित अवसर मिलते हैं। यह स्थिति महिलाओं की तरक्की को धीमा करती है और संगठन में लैंगिक संतुलन को बिगाड़ती है। हालाँकि, हाल के सालों में कुछ महिलाएँ इस ग्लास सीलिंग को तोड़कर उच्च पदों तक पहुँची हैं, लेकिन बड़े पैमाने पर यह समस्या अभी भी बनी हुई है।

3. कार्य एवं जीवन में सामंजस्य

महिलाओं हेतु कार्य और जीवन के मध्य उचित सामंजस्य स्थापित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वे महिलाएं जो किसी संस्थान में कार्यरत हैं, उन्हें प्रायः कार्यस्थल और गृह दोनों के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना होता है। पारिवारिक कार्य, शिशु की देखभाल एवं सामाजिक अपेक्षाओं का प्रभाव उनके कार्य परिलक्षित होता है। बहुधा महिलाओं को कार्यक्षेत्र में प्रगति के अवसर प्राप्त नहीं हो पाते, क्योंकि उन्हें परिवार और कार्य के मध्य संतुलन स्थापित करने में कठिनाई होती है। कार्यालयों में सुगम नियम, शिशु जन्म पर अवकाश एवं परस्पर सहयोग का वातावरण इस समस्या को न्यून कर सकता है। यदि महिलाओं को कार्य एवं जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता प्राप्त हो, तो वे अपने करियर और व्यक्तिगत जीवन दोनों में उन्नति कर सकती हैं।

9.8 असंगठित क्षेत्र की विशेषताऐं

1. अस्थायी नियोजन

असंगठित क्षेत्र की सबसे प्रमुख पहचान यह है कि यहाँ रोजगार स्थायी नहीं होते हैं। महिलाएँ प्रायः ऐसे व्यवसायों में संलग्न होती हैं जो अल्पकालिक होते हैं, जैसे कि मौसमी कार्य, दैनिक मजदूरी अथवा लघु अवधि के कार्य जो शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। कृषि, निर्माण, घरेलू सेवाएँ एवं छोटे पैमाने के कुटीर उद्योगों में कार्यरत महिलाओं को स्थायी नियोजन सुलभ नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप, उनके भविष्य की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं होती और सदैव रोजगार समाप्ति का भय बना रहता है। अस्थायी नियोजन के कारण महिलाएँ आर्थिक रूप से निर्बल हो जाती हैं और उनके जीवन स्तर पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

2. अनुबंध का अभाव

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को किसी प्रकार का लिखित अनुबन्ध प्राप्त नहीं होता है। उन्हें मात्र मौखिक रूप से अथवा अल्पकाल के लिए नियोजित किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में, उन्हें विधिक संरक्षण उपलब्ध नहीं होता और नियोक्तागण उनका अनुचित लाभ उठा सकते हैं। यदि कार्य स्थगित हो जाए अथवा पारिश्रमिक में कटौती कर दी जाए, तो महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए विरोध नहीं कर सकतीं। ऐसी परिस्थिति में, वे पूर्ण रूप से नियोक्ता की इच्छा पर निर्भर रहती हैं।

3. सामाजिक सुरक्षा का अभाव

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएँ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लाभ से वंचित रहती हैं। उन्हें बीमा, पेंशन, मातृत्व अवकाश अथवा स्वास्थ्य जैसी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं। रुग्णता, दुर्घटना अथवा वृद्धावस्था

में वे पूर्णतः असुरक्षित हो जाती हैं। सामाजिक सुरक्षा के अभाव के कारण उनके जीवन में अस्थिरता एवं असुरक्षा की स्थिति बनी रहती है। इसका प्रभाव न केवल महिलाओं पर पड़ता है, अपितु उनके परिवार की आर्थिक स्थिति भी क्षीण हो जाती है।

9.9 प्रमुख असंगठित क्षेत्र

1. कृषि क्षेत्र

असंगठित क्षेत्र में सर्वाधिक महिलाएँ कृषि कार्यों में संलग्न हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ खेतों में बुवाई, निराई-गुड़ाई, कटाई एवं पशुपालन जैसे कार्य करती हैं। वे कृषि कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, परन्तु उनके श्रम को प्रायः समुचित मान्यता नहीं दी जाती। अधिकांश महिलाएँ पारिवारिक खेतों में बिना किसी वेतन के कार्य करती हैं अथवा दैनिक मजदूरी पर नियोजित होती हैं। कृषि क्षेत्र में महिलाओं का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उन्हें आधुनिक प्रौद्योगिकी, प्रशिक्षण एवं उचित पारिश्रमिक का लाभ प्राप्त नहीं हो पाता।

2. घरेलू कामगार

घरेलू कामगार भी असंगठित क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण भाग हैं। इसमें महिलाएँ घरों में साफ-सफाई, भोजन बनाने, बच्चों एवं वृद्धजनों की देखभाल जैसे कार्य करती हैं। यह कार्य पूर्णतः असंगठित होता है और इसमें किसी प्रकार का संविदा अथवा सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती है। घरेलू कामगार महिलाओं को प्रायः अल्प वेतन, अधिक श्रम के घंटे एवं असुरक्षित वातावरण में कार्य करना पड़ता है। कई बार उन्हें शोषण एवं अनुचित व्यवहार का भी सामना करना पड़ता है। तथापि, यह क्षेत्र शहरी क्षेत्रों में निवास करने वाले परिवारों की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. निर्माण क्षेत्र

भवन निर्माण के क्षेत्र में भी असंख्य महिलाएँ कार्यरत हैं। वे ईंटें उठाती हैं, मिट्टी ढोती हैं, सीमेंट मिलाती हैं एवं अन्य शारीरिक श्रम वाले कार्य करती हैं। यह कार्य अत्यंत कठिन एवं जोखिमपूर्ण होता है, किन्तु महिलाओं को इसके बदले में अत्यंत अल्प वेतन प्राप्त होता है। निर्माण मजदूर महिलाओं को किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधा अथवा बीमा उपलब्ध नहीं होता है। कार्यस्थल पर सुरक्षा मानकों का अनुपालन न करना उनके स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है।

4. कुटीर उद्योग

कुटीर उद्योगों में महिलाएँ हस्तशिल्प, बुनाई, सिलाई, बीड़ी निर्माण, अगरबत्ती निर्माण एवं अन्य लघु उत्पादन कार्यों में संलग्न होती हैं। यह कार्य प्रायः घरों अथवा छोटी जगहों पर किया जाता है और इसमें असंख्य महिलाएँ सम्मिलित होती हैं। कुटीर उद्योग महिलाओं को अपना उद्यम आरम्भ करने का अवसर तो प्रदान करते हैं, परन्तु यहाँ भी पारिश्रमिक अल्प होता है और बाजार तक पहुँच दुष्कर होती है। यदि इन उद्योगों को समुचित प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता एवं विपणन सुविधाएँ उपलब्ध हों, तो महिलाएँ आर्थिक रूप से और अधिक सशक्त हो सकती हैं।

9.10 असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की चुनौतियाँ

1. अल्प वेतन

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को प्रायः निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से भी कम वेतन प्राप्त होता है। वे अत्यधिक परिश्रम करती हैं एवं दीर्घकाल तक कार्य करती हैं, किन्तु उन्हें अल्प पारिश्रमिक प्राप्त होता है। वेतन में यह अंतर महिलाओं को आर्थिक रूप से निर्बल करता है एवं उनके जीवन स्तर पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। अल्प वेतन के कारण वे अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ होती हैं और गरीबी से बाहर निकलना उनके लिए दुष्कर हो जाता है।

2. शोषण एवं उत्पीड़न

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत नारियों को बहुधा शोषण एवं उत्पीड़न जैसी समस्याओं से जूझना पड़ता है। कार्यस्थल पर निरापद वातावरण का अभाव, दीर्घकाल तक कार्य करने की अनिवार्यता तथा अनुचित व्यवहार जैसी स्थितियाँ उनके लिए असहनीय हो जाती हैं। अनेक अवसरों पर, नियोक्ता उनकी विवशता का लाभ उठाकर अल्प मानदेय प्रदान करते हैं अथवा उनसे अधिक श्रम करवाते हैं। यौन उत्पीड़न एवं मानसिक यंत्रणा भी इस क्षेत्र में सामान्य बात है। परिवाद करने अथवा विधिक कार्यवाही करने हेतु सुगम प्रक्रिया के अभाव के कारण, अधिकांश महिलाएं मौन रहकर सब कुछ सहन करने को विवश होती हैं।

3. सामाजिक सुरक्षा का अभाव

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। यहां कार्यरत महिलाओं को बीमा, पेंशन, मातृत्व लाभ अथवा स्वास्थ्य जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती हैं। परिणामस्वरूप, रोग, दुर्घटना अथवा वृद्धावस्था में वे पूर्ण रूप से अकेली एवं असुरक्षित हो जाती हैं। सामाजिक

सुरक्षा के अभाव से उनके जीवन में अस्थिरता एवं असुरक्षा बनी रहती है। यह न केवल महिलाओं को, अपितु उनके परिवार की आर्थिक दशा को भी दुर्बल कर देता है।

4. दोहरी उत्तरदायित्व का निर्वहन

महिलाओं के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती दोहरे उत्तरदायित्व के निर्वहन की होती है। वे गृह में बच्चों एवं परिवार का ध्यान भी रखती हैं तथा बाह्य जाकर श्रम करके धन भी अर्जित करती हैं। इस कारण उन्हें शारीरिक एवं मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है। अनेक बार महिलाएं अपने करियर में प्रगति नहीं कर पाती हैं, क्योंकि गृह की जवाबदेही के कारण उनके पास समय एवं ऊर्जा का अभाव होता है। कार्य एवं जीवन के मध्य संतुलन स्थापित न कर पाने के कारण उनका वैयक्तिक एवं व्यावसायिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

9.11 महिलाओं के लिए शासकीय योजनाएँ एवं नीतियाँ

• **महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की पहल:** महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार का एक महत्त्वपूर्ण मंत्रालय है, जिसका ध्येय महिलाओं एवं बालकों का समग्र विकास करना है। यह मंत्रालय महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुदृढ़ करने, लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने और बालकों के पोषण, शिक्षा एवं सुरक्षा के लिए अनेक योजनाएँ क्रियान्वित करता है। मंत्रालय की विशिष्ट पहलों में आंगनवाड़ी सेवाएँ, पोषण अभियान, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, वन स्टॉप सेंटर योजना, महिला हेल्पलाइन, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना एवं स्वाधार गृह योजना सम्मिलित हैं। इन योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार एवं सुरक्षा से संबंधित सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। बालकों के लिए पोषण एवं प्रारंभिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मंत्रालय का लक्ष्य है कि महिलाएँ एवं बालक समाज में सशक्त, सुरक्षित एवं आत्मनिर्भर बनें, ताकि वे देश के विकास में सक्रिय रूप से योगदान कर सकें।

• **मातृत्व लाभ अधिनियम:** मातृत्व लाभ अधिनियम भारत सरकार द्वारा महिलाओं के अधिकारों एवं सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित एक आवश्यक विधान है। इस विधान का उद्देश्य गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं को कार्यस्थल पर आवश्यक सुविधाएँ एवं वित्तीय सुरक्षा प्रदान करना है। इसके अंतर्गत महिला कर्मचारियों को मातृत्व अवकाश, वेतन सहित अवकाश, चिकित्सा सहायता एवं कार्यस्थल पर विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। वर्ष 1961 में पारित इस विधान में समय-समय पर संशोधन किए गए हैं। विशेष रूप से 2017 के संशोधन में मातृत्व अवकाश को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह कर दिया गया, जिससे महिलाओं को प्रसव से पूर्व एवं पश्चात पर्याप्त समय मिल सके। इसके अतिरिक्त, विधान में यह भी प्रावधान है कि 50 से अधिक कर्मचारियों वाले संस्थानों में क्रेच (शिशु देखभाल केंद्र) की व्यवस्था अनिवार्य होगी। इस विधान का उद्देश्य महिलाओं को कार्यस्थल पर समान अवसर प्रदान करना, उनके स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं शिशु के पोषण तथा

देखभाल को सुनिश्चित करना है। मातृत्व लाभ अधिनियम महिलाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा एवं लैंगिक समानता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

• **स्वयं सहायता समूह (SHG):** स्वयं सहायता समूह ग्राम एवं शहर की निर्धन महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने का एक प्रभावकारी माध्यम है। सामान्यतः 10 से 20 महिलाओं का एक लघु समूह होता है, जिसमें सदस्य प्रत्येक माह अल्प बचत करती हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर समूह से ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इस व्यवस्था से महिलाओं को न केवल वित्तीय सहायता मिलती है, अपितु उनमें आत्मनिर्भरता, सहयोग की भावना एवं सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित होती है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाएँ लघु-स्तरीय उद्यम प्रारंभ करती हैं, जैसे- कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, डेयरी, सब्जी उत्पादन अथवा कोई अन्य स्वरोजगार। सरकार ने दीनदयाल अंत्योदय योजना- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत SHG को विशेष समर्थन प्रदान किया है, जिसके अंतर्गत उन्हें बैंक से ऋण, प्रशिक्षण एवं विपणन में सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इन समूहों ने ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ किया है और उन्हें परिवार एवं समाज में निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया है। इस प्रकार SHG न केवल आर्थिक विकास का माध्यम है, अपितु महिलाओं के आत्मविश्वास एवं नेतृत्व क्षमता को भी बढ़ाता है।

• **कौशल विकास कार्यक्रम:** कौशल विकास कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा युवाओं एवं महिलाओं को रोजगार के योग्य बनाने के लिए प्रारंभ की गई एक महत्वपूर्ण पहल है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है कि देश के कार्यशील व्यक्तियों को आधुनिक उद्योगों एवं सेवाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षित किया जाए, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें एवं बेहतर रोजगार प्राप्त कर सकें। कौशल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न प्रशिक्षण केंद्रों एवं संस्थानों के माध्यम से तकनीकी, व्यावसायिक एवं उद्यमिता कौशल सिखाए जाते हैं। इसमें कंप्यूटर शिक्षा, सिलाई-बुनाई, हस्तशिल्प, कृषि से संबंधित तकनीक, स्वास्थ्य सेवाएँ एवं अन्य क्षेत्रों से संबंधित प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) इस पहल का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसके अंतर्गत युवाओं को प्रमाणित प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है एवं सफलतापूर्वक प्रशिक्षण पूर्ण करने पर उन्हें प्रमाण पत्र भी प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त, महिलाओं के लिए विशेष कौशल विकास योजनाएँ क्रियान्वित की जाती हैं, ताकि वे स्वरोजगार एवं लघु व्यवसायों के माध्यम से आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो सकें। इस प्रकार कौशल विकास कार्यक्रम न केवल रोजगार की संभावनाएँ बढ़ाता है, अपितु समाज में आत्मनिर्भरता एवं उद्यमिता की भावना को भी प्रोत्साहित करता है।

• **महिला उद्यमिता योजनाएँ:** भारत सरकार द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने एवं उन्हें स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए क्रियान्वित की जाने वाली आवश्यक पहलें हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं को व्यवसाय प्रारंभ करने, उसे संचालित करने एवं विस्तारित करने के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण

एवं मार्गदर्शन प्रदान करना है। विशिष्ट योजनाओं में स्टैंड अप इंडिया योजना सम्मिलित है, जिसके अंतर्गत महिलाओं को बैंक से ऋण प्राप्त कराया जाता है ताकि वे लघु एवं मध्यम व्यवसाय प्रारंभ कर सकें। इसी प्रकार महिला कोष योजना एवं महिला बैंकिंग योजनाएँ महिलाओं को विशेष वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं। प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP) एवं मुद्रा योजना भी महिलाओं को स्वरोजगार एवं लघु उद्योगों के लिए ऋण उपलब्ध कराती हैं। इसके अतिरिक्त, महिला ई-हाट जैसी पहल महिलाओं को अपने उत्पादों को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर विक्रय करने का अवसर प्रदान करती है। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना, उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना एवं समाज में उनकी भागीदारी को बढ़ाना है। महिला उद्यमिता योजनाएँ न केवल महिलाओं को रोजगार प्रदान करती हैं, अपितु उन्हें नेतृत्व एवं नवीन विचारों की दिशा में भी प्रेरित करती हैं।

9.12 सारांश

भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, चाहे वे संगठित क्षेत्र में हों अथवा असंगठित क्षेत्र में। दोनों ही क्षेत्रों में महिलाएँ सक्रिय रूप से भाग लेकर परिवार, समाज एवं देश के विकास में योगदान करती हैं। असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ कृषि, घरेलू कामकाज, निर्माण कार्य एवं कुटीर उद्योगों में बहुतायत में कार्यरत हैं। वे खेतों में बुआई, कटाई, पशुपालन एवं घरेलू उद्योगों के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करती हैं। शहरों में भी महिलाएँ घरेलू सहायिका एवं लघु उद्योगों में कार्यरत हैं। यद्यपि, इस क्षेत्र में उन्हें अल्प वेतन, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, असुरक्षित कार्यस्थल एवं शोषण जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। असंगठित क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता इसलिए है ताकि यहाँ कार्यरत महिलाओं को न्यूनतम पारिश्रमिक, स्वास्थ्य सुविधाएँ, बीमा एवं पेंशन जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ मिल सके। यदि इस क्षेत्र में सुधार किया जाए, तो महिलाओं का जीवन उत्कृष्ट होगा और वे आर्थिक रूप से अधिक सशक्त बन पाएँगी।

दूसरी ओर, संगठित क्षेत्र महिलाओं को नियमित नौकरी, निर्धारित वेतन, अनुबंध एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। यहाँ वे शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, सूचना प्रौद्योगिकी एवं सरकारी सेवाओं में कार्यरत हैं। संगठित क्षेत्र में महिलाओं को स्थिरता एवं सम्मानजनक वातावरण प्राप्त होता है, परंतु उच्च पदों पर उनकी भागीदारी अभी भी सीमित है। "काँच की छत" जैसी अदृश्य बाधाएँ उन्हें नेतृत्व के पदों तक पहुँचने से अवरुद्ध करती हैं। इसके अतिरिक्त, कार्य एवं जीवन के मध्य संतुलन स्थापित करना एवं लैंगिक भेदभाव जैसी चुनौतियाँ भी उनके करियर में बाधा उत्पन्न करती हैं। अतः संगठित क्षेत्र में महिलाओं के लिए अवसरों को बढ़ाना आवश्यक है। यदि उन्हें समान वेतन, पदोन्नति में समान अवसर एवं नेतृत्व के पदों में भागीदारी प्रदान की जाए, तो वे अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर सकती हैं।

भारत के विकास में महिलाओं की समान भागीदारी का अत्यधिक महत्व है। महिलाएँ न केवल परिवार एवं समाज की आधारशिला हैं, अपितु वे आर्थिक प्रगति की भी रीढ़ हैं। यदि महिलाओं को शिक्षा, कौशल विकास, सामाजिक सुरक्षा एवं समान अवसर प्रदान किए जाएँ, तो वे आत्मनिर्भर बनेंगी और देश की प्रगति में बढ़-चढ़कर योगदान देंगी। महिलाओं की भागीदारी से न केवल आर्थिक विकास होगा, अपितु सामाजिक न्याय एवं लैंगिक समानता भी सुनिश्चित होगी। एक सशक्त राष्ट्र वही है जहाँ पुरुष एवं महिलाएँ समान रूप से विकास की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। इसलिए भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं को दोनों क्षेत्रों में समान अवसर एवं सम्मान प्रदान किया जाए।

इस प्रकार, हम कह यह सकते हैं कि महिलाओं की भूमिका संगठित एवं असंगठित दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, परंतु असंगठित क्षेत्र में सुधार एवं संगठित क्षेत्र में अवसरों को बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं की समान भागीदारी ही भारत को आत्मनिर्भर, प्रगतिशील एवं न्यायपूर्ण राष्ट्र बनाने की दिशा में सबसे बड़ी शक्ति है।

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

असंगठित क्षेत्र- संगठित क्षेत्र उस फलक को संदर्भित करता है जहाँ कामगारों को नियमित रूप से पारिश्रमिक, स्थायी नौकरी, सामाजिक सुरक्षा उपाय और विधिक अधिकार उपलब्ध होते हैं। इसमें वृहद उद्योग, शासकीय दफ्तर, बैंक, बीमा प्रतिष्ठान और अन्य पंजीकृत संगठन अंतर्विष्ट होते हैं।

असंगठित क्षेत्र- असंगठित क्षेत्र उस आर्थिक दायरे को दर्शाता है जहाँ कार्यरत श्रमबल को नियमित पारिश्रमिक, सामाजिक सुरक्षा उपाय, और स्थायी नौकरी जैसी सुविधाएँ सुलभ नहीं होतीं। इसके अंतर्गत लघु उद्योग, कृषि गतिविधियाँ, घरेलू श्रमिक, दैनिक वेतन भोगी, रिक्शा चालक, फेरीवाले जैसे व्यवसायी आते हैं।

सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ- सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ वे शासकीय अथवा संगठनात्मक कार्यक्रम हैं, जिनका लक्ष्य नागरिकों को वित्तीय एवं सामाजिक ख़तरों से संरक्षण प्रदान करना होता है। इन योजनाओं के तहत स्वास्थ्य, वृद्धावस्था, प्रसूति, बेरोज़गारी, दुर्घटना या मृत्यु जैसी स्थितियों में मदद मुहैया कराई जाती है।

स्वयं सहायता समूह- एक लघु स्वैच्छिक संगठन, जिसमें आमतौर पर 10-20 व्यक्ति (प्रायः महिलाएं) सम्मिलित होकर अपनी बचत का संचय करते हैं और सामूहिक रूप से ऋण एवं अन्य वित्तीय गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं। इसका लक्ष्य सदस्यों को वित्तीय सुरक्षा, सामाजिक सशक्तिकरण तथा आत्मनिर्भरता प्रदान करना है।

ग्लास सीलिंग- इस शब्द ने उन समस्याओं को उजागर किया जिनका सामना महिलाएँ व्यवसाय, प्रबंधन, शिक्षण और गैर-लाभकारी संस्थाओं जैसे अलग-अलग क्षेत्रों में उच्च पदों और बेहतर आय स्तर पाने की कोशिश में करती हैं।

9.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चौधरी, एस.पी., महिलाओं सामाजिक अधिकार, प्रथम संस्करण 2006, ठाकुर एण्ड संस, कष्ण कुंज एक्सटेंशन पार्ट, लक्ष्मीनगर, दिल्ली
2. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण, एवं राठौर, जे. एस., लिंग एवं समाज (सिद्धांत तथा व्यवहार में), एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, 2024,
3. नटाणी, प्रकाश नारायण, एवं गौतम, ज्योति, लिंग एवं समाज, रिसर्च पब्लिकेशन
4. P. Sen Gupta, Women Workers in India, p. 247.
5. Women's International Democratic Federation, IVth Congress, p. 13.
6. Rachna Sharma and Atul Kumar Agarwal, CTACT JOURNAL ON MANAGEMENT STUDIES, MAY 2024, VOLUME: 10, ISSUE: 02 ISSN: 2395-1680 (ONLINE) IJMS_Vol_10_Iss_2_Paper_4_1685_1688.pdf
7. IJMS_Vol_10_Iss_2_Paper_4_1685_1688.pdf

9.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संगठित और असंगठित क्षेत्र को परिभाषित करते हुए इनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. असंगठित क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की चुनौतियों का लिखिए।
3. प्रमुख संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
4. शासकीय योजनाओं एवं नीतियों से आप क्या समझते हैं? महिलाओं के लिए बनायी गयी शासकीय योजनाएँ एवं नीतियाँ का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-10 **लैंगिक श्रम विभाजन**

Gender Division of Labour

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 श्रम विभाजन
10.4 लैंगिक श्रम विभाजन
10.5 श्रम-विभाजन के प्रमुख प्रकार
10.6 लैंगिक श्रम-विभाजन का ऐतिहासिक विकास
10.7 लैंगिक श्रम-विभाजन के कारण
10.8 लैंगिक श्रम विभाजन के प्रभाव
10.9 भारतीय संदर्भ में लैंगिक श्रम विभाजन
10.10 लैंगिक श्रम-विभाजन के समाधान
10.11 सारांश
10.12 पारिभाषिक शब्दावली
10.13 बोध प्रश्न के उत्तर
10.14 संदर्भ ग्रंथ
10.15 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

समाज में श्रम विभाजन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति एवं समूह भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। यह व्यवस्था उत्पादनशीलता बढ़ाने, दक्षता लाने और समाज में परस्पर निर्भरता को मजबूत करने में मदद करती है। श्रम विभाजन केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता बल्कि परिवार, समुदाय और संपूर्ण सामाजिक संरचना को प्रभावित करता है। इसी श्रम विभाजन का एक रूप है, लैंगिक श्रम विभाजन। जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच कार्यों का बंटवारा लिंग के आधार पर किया जाता है। लैंगिक श्रम विभाजन से तात्पर्य उस सामाजिक व्यवस्था से है जिसमें पुरुषों और महिलाओं के कामों को अलग-अलग बाँट दिया जाता है। यह बँटवारा जैविक क्षमता पर कम, और सामाजिक धारणाओं, परंपराओं तथा पितृसत्ता पर अधिक आधारित होता है। समाज प्रायः यह मान लेता है कि कुछ कार्य "स्वाभाविक रूप से" स्त्रियों के और कुछ "स्वाभाविक रूप से" पुरुषों के होते हैं। उदाहरण

के रूप में, घर के अंदर खाना बनाना या बच्चों की देखभाल अक्सर महिलाओं की जिम्मेदारी मानी जाती है, जबकि बाहर की आर्थिक गतिविधियाँ पुरुषों के क्षेत्र के रूप में देखी जाती हैं। अर्थात् समाज यह तय कर देता है कि कौन-सा काम "महिलाओं का" है और कौन-सा "पुरुषों का", जबकि वास्तविकता यह है कि दोनों किसी भी कार्य को सीखकर कर सकते हैं। समाज में स्त्री और पुरुष के बीच कार्यों का विभाजन एक प्राचीन परंपरा का हिस्सा रहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में यह बंटवारा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। यह केवल जैविक अंतरों पर आधारित नहीं है।" वर्तमान में शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और समान अधिकारों की मांग के चलते इन पारंपरिक भूमिकाओं में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। फिर भी आज भी लैंगिक श्रम विभाजन विभिन्न रूपों में मौजूद है और सामाजिक असमानताओं को प्रभावित करता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा-

1. श्रम विभाजन एवं लैंगिक श्रम विभाजन को समझना।
2. श्रम-विभाजन के प्रमुख प्रकार को समझना।
3. लैंगिक श्रम-विभाजन के कारण एवं प्रभाव को समझना।
4. भारतीय संदर्भ में लैंगिक श्रम विभाजन को समझना।
5. लैंगिक श्रम-विभाजन के समाधान को जान पायेगें।

10.3 श्रम विभाजन

श्रम-विभाजन से तात्पर्य समाज, संस्था या संगठन में कार्यों के सुव्यवस्थित बंटवारे से है। इस बंटवारे का उद्देश्य यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी विशेष कार्य में दक्षता विकसित कर सके। पारंपरिक समाजों में श्रम-विभाजन कम और सरल होता है। आधुनिक औद्योगिक समाजों में श्रम-विभाजन बहुत जटिल और विस्तृत हो चुका है। जैसे कारखानों, विद्यालयों, अस्पतालों और दफ्तरों में यह बंटवारा स्पष्ट रूप से दिखता है, जहाँ हर व्यक्ति एक विशिष्ट भूमिका निभाता है। श्रम विभाजन के कई आधर है। जिनमे से प्रमुख श्रम-विभाजन के आधार निम्नलिखित हैं-

1. **आर्थिक आधार-** आर्थिक आधार पर श्रम-विभाजन उद्योग, उत्पादन और आर्थिक संरचना पर आधारित होता है, जहाँ दक्षता और उत्पादनशीलता प्रमुख भूमिका निभाती है।

2. **तकनीकी आधार-** उत्पादन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का विभाजन तकनीकी आधार पर छोटे-छोटे विशेष कार्यों में बाँटने से है, जहाँ प्रत्येक कार्य मशीनों, औज़ारों, तकनीक और विशेष कौशल से जुड़ा होता है। इसमें व्यक्ति की भूमिका उसकी तकनीकी दक्षता और प्रशिक्षण से निर्धारित की जाती है।
3. **क्षेत्रीय आधार-** ग्रामीण, शहरी तथा औद्योगिक अर्थात् क्षेत्रीय आधार पर प्रत्येक क्षेत्र अपने प्राकृतिक संसाधनों, जलवायु और आर्थिक संभावनाओं के अनुसार किसी विशेष उत्पादन या कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं।
4. **सामाजिक आधर-** सामाजिक संरचना, परंपरा, जाति, वर्ग, लिंग, आयु और सामाजिक भूमिकाओं के आधार पर होने वाले श्रम विभाजन में व्यक्ति का कार्य उसकी सामाजिक स्थिति और भूमिका से निर्धारित होता है, न कि केवल तकनीकी दक्षता से। इस प्रकार का श्रम विभाजन में विभाजन का आधर सामाजिक होता है। लैंगिक श्रम-विभाजन, सामाजिक श्रम विभाजन का एक महत्वपूर्ण रूप है।

अत: श्रम-विभाजन के ये विभिन्न आधार समाज की संरचना और कार्यप्रणाली को परिभाषित करते हैं।

10.4 लैंगिक श्रम विभाजन

लैंगिक श्रम-विभाजन वह व्यवस्था है जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच कार्य, भूमिकाएँ और जिम्मेदारियाँ "लिंग" के आधार पर निर्धारित की जाती हैं। यह विभाजन प्राकृतिक न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानको के द्वारा निर्धारित किये जाते है। प्राय: घरेलू कार्य (खाना बनाना, बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा) महिलाओं से जुड़े मान लिए जाते हैं। वहीं कमाई, निर्णय, शारीरिक श्रम, नेतृत्व आदि पुरुषों के काम माने जाते हैं।

श्रम-विभाजन के सन्दर्भ में समाजशास्त्रियों का दृष्टिकोण

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक "**द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसाइटी**" में "श्रम-विभाजन को समाज की एकता का आधार माना और इसे यांत्रिक एकता तथा सावयवी (जैविक) एकता के संदर्भ में स्पष्ट किया। उनके अनुसार सामाजिक एकता कभी समानता पर और कभी परस्पर निर्भरता पर आधारित होती है। किंतु लैंगिक श्रम-विभाजन न तो केवल समानता पर आधारित है और न ही विशुद्ध रूप से कार्यात्मक निर्भरता पर, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं और पितृसत्तात्मक संरचना से जुड़ा हुआ है।"[1]

मिचेल के अनुसार "श्रम-विभाजन मूलतः विशेषीकृत भूमिकाओं पर आधारित कार्यों का एक संगठित ढाँचा है। श्रम-बाज़ार में कार्यों का विभाजन आयु, वर्ग, लिंग, नस्ल, योग्यता अथवा प्रशिक्षण जैसे विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है, परंतु इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन की प्रक्रिया को अधिक कुशल बनाना होता है।"[2]

हारलम्बोस का मत है कि "व्यवहारिक रूप से आज भी अधिकांश समाजों में श्रम-विभाजन का सबसे प्रमुख आधार लिंग ही बना हुआ है। उनके अनुसार लैंगिक श्रम-विभाजन स्त्रियों और पुरुषों के बीच लैंगिक आधार पर कार्यों और भूमिकाओं के बँटवारे को दर्शाता है, जो केवल परिवार तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज में स्त्रियों की अधीन और निर्भर स्थिति को बनाए रखने में सहायक होता है।"[3]

ऐन ओकले का मत इन सबसे भिन्न है। उनके अनुसार "लैंगिक श्रम-विभाजन और उससे जुड़ी भूमिकाएँ किसी भी प्रकार से जैविक अंतर पर आधारित नहीं हैं, बल्कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक निर्माण है। इसलिए लैंगिक श्रम-विभाजन को किसी समाज की सांस्कृतिक संरचना के संदर्भ में ही समझा जाना चाहिए।"[4]

अत: लैंगिक आधार पर होने वाले श्रम-विभाजन की प्रकृति को उपरोक्त विद्वानों ने विभिन्न तरीकों से समझाया है। परम्परावादी विचारधारा के अनुसार यह श्रम-विभाजन स्वाभाविक और उद्देश्यपूर्ण है तथा इसका आधार स्त्री और पुरुष के बीच पाए जाने वाले जैविक अंतर हैं। इस दृष्टिकोण में माना जाता है कि ऐसा श्रम-विभाजन आदिम काल से चला आ रहा है और मानव समाज के निरंतर बने रहने के लिए आवश्यक है। एक अन्य दृष्टिकोण यह मानता है कि प्रारंभिक सभ्यताओं में श्रम-विभाजन जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं के कारण विकसित हुआ। इससे स्त्री और पुरुष के बीच सहयोग और पारस्परिक निर्भरता बनी रही। इसके विपरीत, मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार पितृसत्ता और सामाजिक वर्ग विभाजन के शुरुआती दौर में पुरुषों ने उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण प्राप्त किया। महिलाओं का श्रम, विशेषकर घरेलू श्रम, अवमूल्यित हो गया। पूँजीवाद ने महिलाओं के अवैतनिक श्रम से लाभ उठाता है। इस प्रकार लैंगिक श्रम-विभाजन आर्थिक शोषण और सत्ता-संबंधों से जुड़ा हुआ है।

बोध प्रश्न-1

1 लैंगिक श्रम विभाजन का मुख्य आधार क्या है?

A. वर्ग B. शिक्षा C. लिंग D. आय

2 मार्क्स के अनुसार घरेलू श्रम—

A. हमेशा सशुल्क होता है

B. आर्थिक रूप से महत्वहीन होता है

C. बिना वेतन होता है और पूँजीवाद को लाभ पहुँचाता है

D. केवल पुरुषों द्वारा किया जाता है

10.5 श्रम-विभाजन के प्रमुख प्रकार

1. निजी क्षेत्र में श्रम-विभाजन

निजी क्षेत्र वह है जो घर और परिवार से संबंधित होता है। इसमें प्रायः अवैतनिक कार्य शामिल होते हैं। घर का काम, खाना बनाना, बच्चों का पालन-पोषण तथा बुज़ुर्गों व बीमारों की देखभाल करना। खाना बनाना, सफाई, बच्चे संभालना प्रायः महिलाओं की जिम्मेदारी मानी जाती है आर्थिक मूल्य न होने के कारण इसे "काम" नहीं माना जाता इस प्रकार के श्रम सामाजिक रूप से आवश्यक होते हुए भी अक्सर अदृश्य कार्य माना जाता है।

2. सार्वजनिक क्षेत्र में श्रम-विभाजन

सार्वजनिक क्षेत्र में वे कार्य आते हैं जो घर से बाहर और औपचारिक व्यवस्था से जुड़े होते हैं। कुछ पेशे पुरुषों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं जैसे इंजीनियरिंग, पुलिस वहीं कुछ कार्य महिलाओं से जोड़े जाते हैं जैसे शिक्षण, देखभाल आदि। नौकरी और व्यवसाय बाज़ार से संबंधित कार्य राजनीति और प्रशासन यह श्रम प्रायः सशुल्क होता है और सामाजिक मान्यता अधिक प्राप्त करता है।

"श्रीमती पद्मिनी सेन गुप्ता ने अपनी पुस्तक Women Workers in India में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कार्यों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार महिलाएँ कारखानों, खानों, बागानों, कृषि, सार्वजनिक निर्माण विभाग, गृहकार्य, लघु व्यवसाय, कार्यालयी कार्य (जैसे रिसेप्शनिस्ट, टाइपिस्ट, टेलीफोन ऑपरेटर), रेलवे, गोदी और विमान सेवाओं, ग्राम सेविका व सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षा, स्वास्थ्य, कला, वकालत तथा राज्यपाल, राजदूत और मंत्री जैसे उच्च पदों पर भी कार्यरत हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाएँ अनेक प्रकार के व्यवसायों और धंधों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। लेकिन फिर भी महिलायें प्रत्येक धन्धे या व्यवसाय में किस अनुपात में हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है।"[2]

3. उत्पादक बनाम प्रजनन श्रम

उत्पादक श्रम: वह श्रम जिससे वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन होता है और आर्थिक लाभ मिलता है, जैसे—कारखाने, कृषि, कार्यालयी कार्य।

प्रजनन श्रम: वह श्रम जो श्रमिक शक्ति के पुनरुत्पादन में सहायक होता है, जैसे—बच्चों की देखभाल, भोजन, घरेलू कार्य, भावनात्मक सहयोग। समाज के संचालन में दोनों प्रकार के श्रम समान रूप से आवश्यक हैं।

4. भावनात्मक श्रम

भावनात्मक श्रम वह श्रम है जिसमें व्यक्ति को दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए व्यवहार करना पड़ता है। परिवार में भावनात्मक सहारा देना शिक्षण, नर्सिंग, सेवा क्षेत्र में धैर्य व संवेदनशीलता दिखाना यह श्रम मानसिक और भावनात्मक ऊर्जा की मांग करता है, परंतु अक्सर इसकी पहचान नहीं होती। किन्तु परिवार के सदस्यों की भावनाओं का ध्यान रखना यह भी प्रायः महिलाओं से अपेक्षित है

संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रम-विभाजन केवल आर्थिक नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जिसमें निजी-सार्वजनिक, उत्पादक-प्रजनन तथा भावनात्मक श्रम सभी मिलकर समाज के सुचारु संचालन में योगदान देते हैं।

बोध प्रश्न – 2

2 घरेलू कार्य किस श्रेणी में आता है?

A. सशुल्क श्रम **B.** औद्योगिक श्रम **C.** अदृश्य श्रम **D.** संगठित श्रम

10.6 लैंगिक श्रम-विभाजन का ऐतिहासिक विकास

लैंगिक श्रम-विभाजन का तात्पर्य स्त्री और पुरुष के बीच कार्यों के ऐसे बँटवारे से है, जो समय के साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव में विकसित हुआ है। इसका स्वरूप हर ऐतिहासिक चरण में अलग-अलग रहा है।

1. आदिम (प्रागैतिहासिक) समाज

आदिम समाजों में जीवन-निर्वाह मुख्य उद्देश्य था। इस काल में कार्यों का बँटवारा शारीरिक क्षमता और तत्काल आवश्यकताओं के आधार पर हुआ। जिसमें पुरुष शिकार और सुरक्षा से जुड़े कार्य करते थे एवं महिलाएं भोजन संग्रह, बच्चों की देखभाल और घरेलू कार्य आदि संभालती थीं। यह विभाजन अपेक्षाकृत लचीला था तथा इसमें कठोर असमानता कम दिखाई देती थी।

2. कृषि समाज

कृषि के विकास के साथ स्थायी बस्तियाँ बनीं और निजी संपत्ति की अवधारणा जन्म हुआ। जिसमें पुरुषों का नियंत्रण भूमि और उत्पादन के साधनों पर बढ़ा। वहीं दूसरी ओर स्त्रियों की भूमिका घरेलू क्षेत्र तक सीमित होती गई। यहीं से लैंगिक श्रम-विभाजन अधिक स्थायी और असमान होने लगा।

3. सामंती समाज

सामंती व्यवस्था में समाज वर्गों में बँटा हुआ था। जिसमें पुरुष सार्वजनिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय होने लगे। वहीं स्त्रियाँ घरेलू कार्यों और पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित होने लगी। पितृसत्ता मजबूत हुई और लैंगिक भूमिकाएँ परंपराओं से बँध गईं।

4. औद्योगिक समाज

औद्योगिक क्रांति के साथ कारखानों और मजदूरी-आधारित अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। जिसमें एक ओर पुरुषों को मुख्यतः मजदूरी और उद्योग से जोड़ा गया। वहीं दूसरी ओर स्त्रियाँ घरेलू कार्यों के साथ कम वेतन वाले कार्यों में शामिल हुईं। इस काल में "घरेलू कार्य" और "बाहरी कार्य" का स्पष्ट विभाजन हुआ।

5. आधुनिक और समकालीन समाज

आधुनिक काल में शिक्षा, शहरीकरण और महिला आंदोलनों के प्रभाव से बदलाव आए। जिसके फलस्वरूप महिलाऐं शिक्षा, रोजगार के क्षेत्रों और सार्वजनिक जीवन में अधिक भागीदारी करने लगीं। फिर भी घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी अधिकांशतः स्त्रियों पर ही बनी रही। आज लैंगिक श्रम-विभाजन में परिवर्तन हो रहा है, पर पूर्ण समानता अभी भी एक चुनौती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "महिलायें प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में आर्थिक रूप में अपना योगदान देती रही हैं। शिकारी अवस्था में महिलायें शिकार करने नहीं जा सकती थीं तो घर में अनेक आर्थिक धंधे, जैसे- बाँस की चीजें बनाना, अनाज साफ करना आदि कार्य किया करती थीं। पशुपालन युग में पशु की देखभाल, दूध से अनेक वस्तुयें बनाना, कपड़ा बुनना इत्यादि कार्य महिलाओं द्वारा किये जाते थे। कृषि युग में भी महिलायें पुरुषों को कृषि कार्य में सहायता पहुँचाती रही हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद महिलाओं को घर से बाहर धन्धे के अधिक अवसर मिलने लगे हैं। अमेरिका में 33 प्रतिशत, जर्मन फेडरल रिपब्लिक मेंभारत में लिंग 36 प्रतिशत, पोलैण्ड में 44.8 प्रतिशत, रूस में 45 प्रतिशत तथा भारत में 27 प्रतिशत महिलायें किसी-न-किसी रूप में कार्यरत हैं।"[3]

10.7 लैंगिक श्रम-विभाजन के कारण

जैसा कि प्रिय शिक्षार्थियों हम जानते हैं कि लैंगिक श्रम-विभाजन किसी प्राकृतिक व्यवस्था का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का निष्कर्ष है। अत: इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. समाजीकरण

समाजीकरण की क्रिया बाल्यकाल से हो शुरू हो जाती है। बचपन से ही स्त्री और पुरुष का अलग-अलग समाजीकरण किया जाता है। लड़कियों को घरेलू, देखभाल और सहयोगात्मक भूमिकाओं के लिए तथा लड़कों को बाहरी, निर्णयात्मक और आर्थिक गतिविधियों के लिए तैयार किया जाता है। यही सामाजिककरण आगे चलकर श्रम-विभाजन को लैंगिक रूप देता है।

2. पितृसत्ता

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में पुरुषों को अधिक शक्ति, संसाधन और निर्णय-सत्ता प्राप्त होती है, जबकि महिलाओं को घरेलू और अवैतनिक श्रम तक सीमित कर दिया जाता है। यह व्यवस्था श्रम के असमान और लैंगिक विभाजन को बनाए रखती है।

3. आर्थिक संरचना

आर्थिक व्यवस्था उत्पादक (सशुल्क) श्रम को अधिक महत्व देती है और प्रजनन (अवैतनिक) श्रम को कम आँकती है। चूँकि महिलाओं को प्रायः घरेलू और प्रजनन श्रम से जोड़ा जाता है, इसलिए उनकी श्रम-भूमिका सामाजिक और आर्थिक रूप से कम मूल्यवान मानी जाती है।

4. सांस्कृतिक मान्यताएँ

परंपरागत सांस्कृतिक विश्वास और रूढ़ियाँ यह निर्धारित करती हैं कि कौन-सा कार्य स्त्रियों के लिए 'उपयुक्त' है और कौन-सा पुरुषों के लिए। ये मान्यताएँ श्रम-विभाजन को प्राकृतिक और स्वाभाविक के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिससे असमानता बनी रहती है।

10.8 लैंगिक श्रम विभाजन के प्रभाव

लैंगिक श्रम-विभाजन का प्रभाव महिलाओं के जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ता है—

1 आर्थिक प्रभाव

लिंग के आधार पर श्रम का विभाजन किया गया है। महिलाओं के लिए घर की चारदीवारी में ही कार्य क्षेत्र का निर्धारण किया गया है, जबकि पुरुषों का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण संसार माना गया है। इसके बावजूद यदि कोई महिला घर की चारदीवारी से निकलकर कार्य करती है तो उसे बहुत अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता

है। इन कार्यशील महिलाओं को तीन श्रेणियों घरेलू, नौकरी पेशा व श्रमिक महिलाओं में विभाजित किया जा सकता है

(क) स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता- लैंगिक श्रम-विभाजन के कारण महिलाएँ प्रायः अवैतनिक या कम वेतन वाले कार्यों तक सीमित रह जाती हैं, जिससे उनकी आर्थिक निर्भरता बढ़ती है और संसाधनों पर उनका नियंत्रण कम होता है। लैंगिक श्रम विभाजन के कारण स्त्रियाँ प्रायः अवैतनिक घरेलू श्रम तक सीमित रह जाती हैं, जिससे उनकी आय नहीं होती और वे आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हो जाती हैं।

(ख) मजदूरी में असमानता- जहाँ स्त्रियाँ वेतनयुक्त कार्य करती भी हैं, वहाँ समान कार्य के लिए उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है। इसे 'जेंडर वेज गैप' कहा जाता है।

(ग) रोजगार के सीमित अवसर- कुछ पेशों को 'पुरुषों का काम' और कुछ को 'स्त्रियों का काम' मानने से स्त्रियों के लिए तकनीकी, प्रबंधकीय और उच्च पदों तक पहुँच सीमित हो जाती है।

2 सामाजिक प्रभाव

घरेलू और देखभाल संबंधी कार्यों तक सीमित रहने के कारण महिलाओं की निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में भागीदारी सीमित हो जाती है, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति कमजोर बनी रहती है।

(क) सामाजिक असमानता- लैंगिक श्रम विभाजन सामाजिक असमानता को जन्म देता है, जहाँ पुरुषों को अधिक सम्मान, शक्ति और निर्णय-क्षमता मिलती है।

(ख) शिक्षा पर प्रभाव- कई समाजों में लड़कियों की शिक्षा को घरेलू कार्यों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है, जिससे उनका शैक्षिक विकास बाधित होता है।

(ग) रूढ़िवादी मानसिकता का निर्माण- यह विभाजन लैंगिक रूढ़ियों (Gender Stereotypes) को मजबूत करता है, जैसे—स्त्रियाँ भावुक होती हैं और पुरुष तर्कसंगत।

3 मनोवैज्ञानिक प्रभाव कार्य और पारिवारिक उत्तरदायित्वों का असमान बोझ महिलाओं में तनाव, थकान और मानसिक दबाव को जन्म देता है।

(क) आत्म-सम्मान में कमी- घरेलू कार्यों को 'काम' न मानने के कारण स्त्रियों के आत्म-सम्मान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ख) भूमिका-दबाव- स्त्रियों पर माँ, पत्नी, बहू और कर्मचारी जैसी एक साथ कई भूमिकाएँ निभाने का दबाव होता है। जिससे कभी- कभी भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

4 पारिवारिक प्रभाव

(क) निर्णय-निर्माण में असमानता- आर्थिक निर्भरता के कारण परिवार में निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों के पास अधिक रहती है।

(ख) घरेलू हिंसा की संभावना- असमान शक्ति-संबंधों के कारण कई बार घरेलू हिंसा और शोषण की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

5 विकास पर प्रभाव

लैंगिक श्रम-विभाजन के कारण समाज की आधी आबादी की क्षमताओं और योगदान का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। अत: श्रम विभाजन समाज की आधी आबादी की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग नहीं होने देता है। जिससे किसी भी देश का समग्र सामाजिक और आर्थिक विकास प्रभावित होता है। आर्थिक विकास की गति धीमी होती है। सामाजिक न्याय बाधित होता है। समानता आधारित समाज का निर्माण कठिन हो जाता है।

10.9 भारतीय संदर्भ में लैंगिक श्रम विभाजन

भारतीय समाज में लैंगिक श्रम-विभाजन एक दीर्घकालिक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया का परिणाम है। यहाँ कार्यों का बँटवारा स्त्री और पुरुष के बीच परंपरा, संस्कृति, जाति, वर्ग, धर्म और पितृसत्तात्मक संरचना के प्रभाव में हुआ है। इस विभाजन ने महिलाओं और पुरुषों की भूमिकाओं को अलग-अलग निर्धारित किया है।

1. परिवार और घरेलू क्षेत्र- भारतीय समाज में परिवार की संरचना में संयुक्त परिवार अधिक पायें जाते हैं। जहां महिलाओं की पारिवारीक जिम्मेदारियाँ अधिक होती हैं। घरेलू कार्यों से लेकार परिवार के सदस्यों की देखभाल उन्ही की होती है। जिससे महिलाओं का श्रम अदृश्य बना रहता है। इसके विपरीत, पुरुषों को परिवार का मुख्य कमाऊ सदस्य माना जाता है। शिक्षित महिलाएँ नौकरी कर रही हैं, लेकिन घरेलू श्रम की जिम्मेदारी अभी भी उन पर ही है।

2. कृषि क्षेत्र

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। ग्रामीण महिलाओं पर घरेलू कार्यों के साथ-साथ कृषि और पशुपालन का भी दायित्व होता है, जिससे उन पर दोगुना श्रम-बोझ पड़ता है। इस क्षेत्र में महिलाएँ बीज बोने,

निराई-गुड़ाई, कटाई, पशुपालन और कृषि-सहायक कार्यों में बड़ी भूमिका निभाती हैं। खेतों में भारी श्रम करती हैं परंतु श्रमिक के रूप में उनकी गिनती कम होती है। भूमि-स्वामित्व, निर्णय-निर्माण और आय पर पुरुषों का अधिक नियंत्रण रहता है।

3. असंगठित क्षेत्र

भारत में महिलाओं की बड़ी संख्या असंगठित क्षेत्र—जैसे घरेलू काम, निर्माण, बागान, हस्तशिल्प और छोटे उद्योगों—में कार्यरत है। यहाँ उन्हें कम वेतन, कार्य-असुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा की कमी का सामना करना पड़ता है।

4. संगठित क्षेत्र और रोजगार

शिक्षा और नगरीयकरण के साथ महिलाओं की भागीदारी संगठित क्षेत्र में बढ़ी है, परंतु वेतन-असमानता, काँच की छत (Glass Ceiling) और सीमित नेतृत्व अवसर अब भी मौजूद हैं। नगरीय क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं को नौकरी के साथ-साथ घरेलू जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती हैं, जिसे डबल बर्डन कहा जाता है। उच्च पदों पर महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है। साथ ही कानूनी और आर्थिक रूप से घरेलू काम को "उत्पादक श्रम" नहीं माना जाता है।

5. जाति, वर्ग और क्षेत्र का प्रभाव

लैंगिक श्रम-विभाजन पर जाति और वर्ग का गहरा प्रभाव है। दलित, आदिवासी और गरीब वर्ग की महिलाएँ कठिन और कम-मजदूरी वाले कार्यों में अधिक पाई जाती हैं, जबकि मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत सुरक्षित और शिक्षित क्षेत्रों में होती है।

6. परिवर्तन और समकालीन प्रवृत्तियाँ

महिला शिक्षा, क़ानूनी सुधार, सरकारी योजनाएँ और महिला आंदोलनों के कारण लैंगिक श्रम-विभाजन में बदलाव आ रहा है। महिला स्वयं सहायता समूह (SHG), मातृत्व लाभ योजना, शिक्षा और रोजगार योजनाएँ इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं की स्थिति मजबूत करना है। फिर भी घरेलू श्रम का असमान बोझ और अदृश्य श्रम की समस्या बनी हुई है।

भारतीय संदर्भ में लैंगिक श्रम-विभाजन सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं और आर्थिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारत में लैंगिक श्रम-विभाजन ग्रामीण और शहरी दोनों संदर्भों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समानता की दिशा में प्रगति के बावजूद, वास्तविक परिवर्तन के लिए घरेलू और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में समान

भागीदारी, मान्यता और अवसर सुनिश्चित करना आवश्यक है। लैंगिक संवेदनशील समाजीकरण की आवश्यकता है। तभी एक अधिक न्यायपूर्ण, संतुलित और समान समाज का निर्माण संभव है। भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण और कल्याण के लिए विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, जो लैंगिक असमानता को कम करने की दिशा में प्रयासरत हैं।

10.10 लैंगिक श्रम-विभाजन के समाधान

लैंगिक श्रम-विभाजन समाज में असमानता, शोषण और अवसरों की कमी को जन्म देता है। इसे कम करने और लैंगिक समानता स्थापित करने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं—

1. घरेलू कार्यों का समान बँटवारा- घर के काम और देखभाल संबंधी जिम्मेदारियाँ केवल महिलाओं की नहीं, बल्कि पुरुषों और परिवार के सभी सदस्यों की साझा जिम्मेदारी होनी चाहिए।

2. अदृश्य श्रम को मान्यता और मूल्य- घरेलू और देखभाल से जुड़े कार्यों को आर्थिक व सामाजिक मान्यता दी जाए। नीतियों और आँकड़ों में इन्हें शामिल किया जाना चाहिए।

3. समान कार्य के लिए समान वेतन- कार्यस्थलों पर लैंगिक वेतन-असमानता को समाप्त करने के लिए समान काम पर समान वेतन का सख़्ती से पालन होना चाहिए।

4. शिक्षा और लैंगिक संवेदनशीलता- शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता, अधिकारों और भूमिकाओं के प्रति संवेदनशीलता को शामिल किया जाए, ताकि बचपन से ही समानता की सोच विकसित करनी होगी। जिसके परिणामस्वरूप पुरुषों में लैंगिक संवेदनशीलता और समानता की भावना का विकास हो।

5. महिलाओं की शिक्षा और कौशल-विकास- महिलाओं को शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल-विकास के अवसर प्रदान किए जाएँ, जिससे वे विविध क्षेत्रों में भागीदारी कर सकें।

6. कार्यस्थल पर सुरक्षा और सम्मान- महिलाओं के लिए सुरक्षित कार्य-परिस्थितियाँ, यौन उत्पीड़न के विरुद्ध प्रभावी कानून और शिकायत तंत्र सुनिश्चित किए जाएँ।

7. नीति और क़ानूनी हस्तक्षेप- सरकार द्वारा मातृत्व-पितृत्व अवकाश, बाल-देखभाल सुविधाएँ, लचीले कार्य-घंटे और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ लागू की जाएँ।

8. पुरुषों की भागीदारी- पुरुषों को घरेलू कार्यों और देखभाल में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सामाजिक अभियानों के माध्यम से भूमिकाओं की रूढ़ धारणाएँ तोड़ी जाएँ।

9. मीडिया और संस्कृति में बदलाव- मीडिया, विज्ञापन और लोकप्रिय संस्कृति में लैंगिक रूढ़ियों के बजाय समानता और साझेदारी को बढ़ावा दिया जाए।

10. तकनीकी परिवर्तन- डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन कार्य के माध्यम से महिलाओं के लिए नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, यद्यपि डिजिटल विभाजन अभी भी एक चुनौती बना हुआ है।

लैंगिक श्रम-विभाजन का समाधान केवल क़ानूनों से नहीं, बल्कि सामाजिक सोच, शिक्षा, नीति और व्यवहार में समग्र बदलाव से संभव है। समान भागीदारी और सम्मान से ही वास्तविक लैंगिक समानता स्थापित हो सकती है।

10.11 सारांश

लैंगिक श्रम-विभाजन समाज की एक गहरी जड़ें जमाए हुई संरचना है, जो सामाजिककरण, पितृसत्ता और आर्थिक असमानताओं से पोषित होती है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं का श्रम प्रायः अदृश्य और अवमूल्यित रह जाता है। समानता आधारित समाज के निर्माण के लिए श्रम के इस असमान विभाजन को चुनौती देना और साझा उत्तरदायित्व की संस्कृति को बढ़ावा देना आवश्यक है। लैंगिक श्रम विभाजन एक ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से निर्मित व्यवस्था है। यह केवल कार्यों का बँटवारा नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता का प्रमुख आधार भी है। दुर्खीम इसे प्राकृतिक जैविक अंतर मानते थे, जबकि मार्क्स इसे आर्थिक शोषण से जोड़ते हैं। आज के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि यह विभाजन महिलाओं को अवमूल्यित और निर्भर बनाता है।

10.12 पारिभाषिक शब्दावली

अदृश्य कार्य- अदृश्य कार्य से आशय उन कार्यों से है, जो समाज और अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं, लेकिन न तो उनका वेतन मिलता है और न ही उन्हें औपचारिक मान्यता दी जाती है। अदृश्य कार्य का अधिकांश भाग महिलाओं द्वारा किया जाता है। चूँकि इसे "प्राकृतिक" या "घर का काम" मान लिया जाता है, इसलिए इसका आर्थिक मूल्यांकन नहीं होता, जिससे लैंगिक असमानता बनी रहती है।

भूमिका संघर्ष- जब किसी व्यक्ति को एक साथ कई भूमिकाओं या उम्मीदों को निभाना होता है, और वे भूमिकाएँ आपस में टकराती हैं। इस स्थिति में व्यक्ति को यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि किस भूमिका को प्राथमिकता दें। तो इस स्थिति को भूमिका संघर्ष

10.13 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न-1 1- C. लिंग, 2- C. बिना वेतन होता है और पूँजीवाद को लाभ पहुँचाता है
बोध प्रश्न-2 C. अदृश्य श्रम

10.14 संदर्भ ग्रंथ

1. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण, एवं राठौर, जे. एस., लिंग एवं समाज (सिद्धांत तथा व्यवहार में), एस. बी. पी. डी. पब्लिशिंग हाउस, 2024, पृ. 90.
2. उपरोक्त पृ. 90.
3. उपरोक्त पृ. 90.
4. उपरोक्त पृ. 90.
5. नटाणी, प्रकाश नारायण, एवं गौतम, ज्योति, लिंग एवं समाज, रिसर्च पब्लिकेशन, पृ. 15;
6. P. Sen Gupta, Women Workers in India, p. 247.
7. नटाणी, प्रकाश नारायण, एवं गौतम, ज्योति, लिंग एवं समाज, रिसर्च पब्लिकेशन, पृ. 15;
8. Women's International Democratic Federation, IVth Congress, p. 13.

10.15 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण, एवं राठौर, जे. एस. (2024). लिंग एवं समाज (सिद्धांत तथा व्यवहार में). एस. बी. पी. डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. नटाणी, प्रकाश नारायण, एवं गौतम, ज्योति. (n.d.). लिंग एवं समाज. रिसर्च पब्लिकेशन.

अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट

1. Women's International Democratic Federation. (n.d.). IVth Congress.

10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लैंगिक श्रम विभाजन की अवधारणा को विस्तार से समझाइए।
2. लैंगिक श्रम विभाजन के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. लैंगिक श्रम-विभाजन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
4. लैंगिक श्रम-विभाजन के ऐतिहासिक विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई– 11 **स्वास्थ्य**
Health

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 स्वास्थ्य में जैविक कारक
11.3.1 आनुवंशिक कारक
11.3.2 हार्मोन्स संबंधी प्रभाव
11.4 स्वास्थ्य में सामाजिक कारण
11.5 स्वास्थ्य से जुड़े व्यवहार
11.5.1 जोखिम लेने वाले व्यवहार
11.5.2 आहार
11.5.3 व्यायाम बनाम् शारीरिक निष्क्रियता
11.5.4 मोटापा
11.6 मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे
11.6.1 अवसाद
11.6.2 आत्मघात
11.6.3 आहार विकारों में लिंग – भेद
11.7 सारांश
11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

जीवन-शैली से जुड़ी मौतों में लगातार वृद्धि हो रही है और क्योंकि इन्हें रोका जा सकता है, इसलिए अब शोध का केंद्र मधुमेह और हृदय रोग जैसी चिरकालिक बीमारियों पर हो गया है, जो व्यक्ति के विभिन्न व्यवहारिक पैटर्न से संबंधित होती हैं। साथ ही, ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौगोलिक कारक भी स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित करते हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र में किए गए शोध यह दर्शाते हैं कि विभिन्न लिंगों के बीच स्वास्थ्य अनुभवों में असमानताएँ मौजूद हैं। पुरुषों और महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में स्पष्ट अंतर पाया गया है। ये अंतर

शारीरिक भिन्नताओं, हार्मोनल बदलावों, आनुवांशिक तत्वों, जैविक लिंग, सामाजिक रूप से निर्मित लैंगिक भूमिकाओं तथा इनके पारस्परिक प्रभाव से उत्पन्न होते हैं, जो किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, रोगों और विकारों के विकसित होने की संभावना, मृत्यु दर, रोगग्रस्तता तथा स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान में भी पुरुषों और महिलाओं के बीच भिन्नताएँ देखी जाती हैं। यह भी इस बात पर निर्भर करता है कि वे अपने लक्षणों को कैसे समझते और पहचानते हैं, जिसके आधार पर उनके स्वास्थ्य व्यवहार और अंततः स्वास्थ्य परिणाम तय होते हैं। साथ ही, लैंगिक और लैंगिक अल्पसंख्यक समूहों की स्वास्थ्य स्थिति में भी उल्लेखनीय असमानताएँ पाई गई हैं।

11.2 उद्देश्य

1. इस इकाई में स्वास्थ्य में जैविक कारक को जान सकेंगे
2. इस इकाई में स्वास्थ्य में सामाजिक कारण का अध्यन कर पाएंगे
3. इस इकाई में मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे को समझ सकेंगे।

11.3 स्वास्थ्य में जैविक कारक

जैविक कारक वे प्राकृतिक शारीरिक तत्व होते हैं जो किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य को सीधे प्रभावित करते हैं। ये कारक जन्म से जुड़े होते हैं और व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होते हैं, फिर भी स्वास्थ्य की स्थिति तय करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रमुख जैविक कारकों में आयु, लिंग, आनुवांशिक संरचना, हार्मोनल परिवर्तन और शारीरिक संरचना शामिल हैं। उदाहरण के लिए, उम्र बढ़ने के साथ शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो सकती है, जिससे बीमारियों का खतरा बढ़ता है। इसी प्रकार, आनुवांशिक कारकों के कारण कुछ लोगों में मधुमेह, हृदय रोग या उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों की संभावना अधिक होती है।

लिंग भी स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण जैविक कारक है। पुरुषों और महिलाओं में हार्मोनल अंतर के कारण कुछ रोगों की प्रवृत्ति अलग-अलग होती है। महिलाओं में प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ अधिक पाई जाती हैं, जबकि पुरुषों में कुछ हृदय संबंधी रोगों का जोखिम अधिक हो सकता है।

11.3.1 आनुवंशिक कारक

आनुवंशिक कारक वे जैविक तत्व होते हैं जो माता-पिता से बच्चों में जीन के माध्यम से स्थानांतरित होते हैं। ये कारक किसी व्यक्ति की शारीरिक बनावट, रोगों के प्रति संवेदनशीलता और समग्र स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

कुछ बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो आनुवंशिक रूप से विरासत में मिलती हैं, जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, थैलेसीमिया और कुछ प्रकार के कैंसर। यदि परिवार में किसी विशेष रोग का इतिहास रहा हो, तो अगली पीढ़ी में उसके होने की संभावना बढ़ जाती है। आनुवंशिक कारक केवल रोगों तक सीमित नहीं होते, बल्कि व्यक्ति की प्रतिरक्षा क्षमता, चयापचय, हार्मोन संतुलन और दवाओं के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया को भी प्रभावित करते हैं। इसके कारण एक ही वातावरण में रहने वाले दो लोगों का स्वास्थ्य अलग-अलग हो सकता है।

हालाँकि आनुवंशिक कारकों को बदला नहीं जा सकता, लेकिन संतुलित आहार, नियमित व्यायाम, स्वस्थ जीवन-शैली और समय पर चिकित्सकीय जाँच द्वारा इनके नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार, आनुवंशिक कारक स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण आधार हैं, जिनका प्रभाव जीवन-शैली और पर्यावरणीय कारकों के साथ मिलकर दिखाई देता है।

11.3.2 हार्मोन्स संबंधी प्रभाव

हार्मोन शरीर में बनने वाले रासायनिक संदेशवाहक होते हैं, जो विभिन्न अंगों और प्रणालियों की क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। ये वृद्धि, विकास, चयापचय, प्रजनन, मनोदशा और प्रतिरक्षा प्रणाली जैसे अनेक शारीरिक एवं मानसिक कार्यों को प्रभावित करते हैं। किशोरावस्था, गर्भावस्था, तनाव और बढ़ती उम्र के दौरान हार्मोनल परिवर्तन अधिक स्पष्ट होते हैं, जिससे शारीरिक और मानसिक बदलाव देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त, हार्मोन भावनाओं, व्यवहार और मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर डालते हैं, जैसे तनाव, चिड़चिड़ापन या अवसाद। इस प्रकार, हार्मोन्स का संतुलन बनाए रखना अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है, और इसके लिए स्वस्थ जीवन-शैली, संतुलित आहार, पर्याप्त नींद और समय पर चिकित्सकीय सलाह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

11.4 स्वास्थ्य में सामाजिक कारण

स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के मुद्दे न केवल जैविक कारकों से निर्धारित होते है, बल्कि काफी हद तक सामाजिक कारकों, विशेषकर व्यवहरात्मक मुद्दों से भी निर्धारित होते है। मृत्यु के कारण और जीवन प्रत्याशा सभी सामाजिक कारकों जैसे आहार, व्यायाम, शराब, धूमपान आदि से संबंधित हैं। आधुनिक समय की गतिहीन जीवनशैली हृदय रोगों, मधुमेह, गुर्दे की बीमारियों और कैंसर के मुद्दों का कारण हो सकती है। एस प्रकार, अब उन सामाजिक कारकों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा जो सुरक्षात्मक कार्य करते है और जिनका स्वरूप स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। परिणामस्वरूप ये विभिन्न लिंगों के बीच स्वास्थ्य में असमानताओं में योगदान करते है।

11.5 स्वास्थ्य से जुड़े व्यवहार

स्वास्थ्य से जुड़े मुख्य व्यवहरात्मक कारक इस प्रकार है-

11.5.1 जोखिम लेने वाले व्यवहार

(1) दुर्घटना से होने वाली मोतें - र्घटना से होने वाली मौतें उन अनहोनी घटनाओं के कारण होती हैं, जो अचानक और अप्रत्याशित रूप से घटती हैं। सड़क दुर्घटनाओं के लिए तेज ड्राइविंग, शराब पीकर ड्राइविंग सीट बेल्ट न पहनने आदि जैसे व्यवहारों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यहाँ तक कि खाली समय की गतिविधियों में भी, पुरुषों को स्काई ड्राइविंग, रॉकक्लाइमिंग, मोटर साइकिल रेसिंग, बंजी जंपिग आदि में शामिल होते देखा जा सकता है जो जोखिम भरा है और दुर्घटनाओं का कारण बन सकता है। दुर्घटनाओं के कारण केवल व्यक्ति ही नहीं, बल्कि परिवार और समाज भी प्रभावित होते हैं।

(2) जोखिम भारी यौन गतिविधियां – जोखिम मरी यौन गतिविधियों में संलग्न होने के दूरगामी स्वास्थ्य परिणाम भी हो सकते हैं। अजनबियों के साथ असुरक्षित यौन संबंध या नशे की स्थिति में सेक्स करने से पुरुषों और महिलाओं दोनों को HIV (हयूमन इम्यूनो डेफिशियेंसी वायरस) के संपर्क में आने का खतरा हो सकता है, जिसके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं।

(3) धूम्रपान और मद्यसार जैसी जोखिम भरी आदतें- धूम्रपान को स्वास्थ्य संबंधी खतरों से जुड़ी सबसे खतरनाक आदतों में से एक माना गया है और इसे फेफड़ों के कैंसर, हृदय रोग आदि से जोड़ा जा सकता है। पिछले एक दशक में. धूम्रपान में लैंगिक अन्तर में कमी आई है। अधिक महिलाओं के धूम्रपान के साथ, इससे संबंधित मौतें, पुरुषों और महिलाओं के बीच अधिक समान रूप से वितरित हो गई है।

11.5.2 आहार

दुनिया भर के आंकड़े बताते हैं कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में अधिक स्वस्थ आहार लेती हैं अधिकांश संस्कृतियों में स्वस्थ आहार को स्त्रीत्व और अस्वास्थ्यकर आहार को पुरुषत्व से जोड़ा जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में भोजन और आहार के बारे में लैंगिक रूढ़ धारणाएँ इस प्रारुप के साथ मजबूती से जुड़ी पाई गई हैं। स्वस्थ आहार अपनाने से स्वास्थ्य संबंधी खतरों को कम किया जा सकता है लेकिन पुरुषों में आहार सहित जीवन शैली में बदलाव को अपनाने में प्रतिरोध दिखाई देता है। फलों, सब्जियों और वसाहीन माँस का कम कैलोरी वाला स्वस्थ आहार उनके पुरुषत्व के लिए खतरा हो सकता है जबकि उच्च कैलोरी वाला भोजन खाने से उनमें पुरुषत्व की भावना पैदा हो सकती है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों और संगठनों का सुझाव है कि फलों, सब्जियों, वसाहीन माँस, साबुत अनाज आदि से भरपूर आहार का सहारा लेकर और वसायुक्त और तले हुए भोजन चीनी और नमक से परहेज

करके कैंसर, मधुमेह, हृदय संबंधी बीमारियों और ऐसी चिरकालिक स्थितियों के विकास के जोखिम को प्रभावी ढंग से प्रबंधित किया जा सकता है।

11.5.3 व्यायाम बनाम् शारीरिक निष्क्रियता

गतिहीन जीवन शैली गैर-संचारी रोगों के विकास में योगदान करती है, जबकि नियमित शारीरिक गतिविधि और व्यायाम अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ जीवन की गुणवत्ता को भी बढ़ाते हैं। विश्वव्यापी आंकड़े बताते हैं कि महिलाएँ अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में शारीरिक रूप से कम सक्रिय रहती हैं। गतिविधि की कमी गैर-संचारी रोगों के जोखिम को बढ़ाती है, जबकि व्यायाम और नियमित शारीरिक गतिविधियाँ शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा में मदद करती हैं।

11.5.4 मोटापा

मोटापा वर्तमान समय में एक प्रमुख सरोकार का विषय बन गया है। यह उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय संबंधी समस्याओं, उच्च कोलेस्ट्राल और कैंसर जैसे मृत्यु के कुछ प्रमुख कारणों में से एक प्रमुख जोखिक कारक है। हालांकि, पुरुषों और महिलाओं में मोटापे के रूप अलग अलग होते हैं। जबकि पुरुषों में एंडड्राइन मोटापा होता हैं यानि पेट में अतिरिक्त वजन की उपस्थिति, महिलाओं में गाइनोइड मोटपा होता है। प्रजनन संबंधी समस्याओं और बच्चें पैदा करने के दौरान महिलाओं का वजन अक्सर बढ़ जाता है। व्यायाम की कमी भी इस स्थति में योगदान करती है।

11.6 मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे

मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे (Mental Health Issues) उन स्थितियों को कहते हैं जो आपके विचारों, भावनाओं, मूड और व्यवहार को प्रभावित करती हैं। इनमें अवसाद (Depression), चिंता (Anxiety), सिज़ोफ्रेनिया (Schizophrenia), एडीएचडी (ADHD) आदि शामिल हैं। ये स्थितियाँ अकेलेपन, अत्यधिक क्रोध, नींद की कमी, ऊर्जा की कमी, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई और सामाजिक रूप से अलग-थलग महसूस करने जैसे लक्षण पैदा कर सकती हैं।

11.6.1 अवसाद

सभी मानसिक स्वास्थ्य मुद्दों में अवसाद अब तक दुनिया भर में सबसे आम रहा है और इसे हृदय और अन्य बीमारियों और मृत्युदर के मुद्दों के जोखिम कारकों से जोड़ा गया है। सामुदायिक सर्वेक्षणों और अधिक संरचित नैदानिक आंकड़ों से प्राप्त स्व-रिपोर्ट मापों के साक्ष्य से पता चलता है कि महिलाओं को नैदानिक अवसाद

के साथ अधिक बार निदान किया जाता है और उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में अवसाद के अधिक लक्षणों का सामना करना पड़ता है। अवसाद में लिंग भेद के अग्रणी कारक निम्नलिखित है -

क) **जेंडर भूमिकाएँ**- अवसाद में लिंग अंतर को समझाने में सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक लैंगिक भूमिका समाजीकरण है। हील और लिन्च (1983) की लैंगिक गहनता परिकल्पना के अनुसार, किशोरावस्था से ही समाज लड़कों और लड़कियों पर अलग-अलग व्यवहार और रूढ़ियों को अपनाने का दबाव डालता है। परिणामस्वरूप, लड़कियाँ अधिक स्त्रीत्व आधारित रूढ़ियों को सीखने और अपनाने लगती हैं, जैसे अधिक भावुक होना, आत्म-बलिदान करना और असहायता की शैली में संघर्ष करना, जो भविष्य में अवसाद के लिए जोखिम पैदा कर सकती हैं। वहीं, लड़के अधिक पुरुषत्व आधारित व्यवहार जैसे आत्मविश्वास और सम्मान विकसित करते हैं, जो उन्हें अवसाद से बचाने में मदद कर सकता है।

ख) **दुर्व्यवार और हिंसा-** एक और संभावित कारण बचपन में यौन शोषण जैसी त्रासद घटनाएँ हो सकती हैं, जो विशेष रूप से लड़कियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। दुनिया भर के आंकड़े बताते हैं कि 9.9 मिलियन प्रतिभागियों में, 7.6 प्रतिशत लड़कों ने यौन शोषण की सूचना दी, जबकि यह प्रतिशत लड़कियों में 18 था (स्टोलटेनबोर्ग, वेन इंजेडोन, यूसर और बेकर मैन्स कैनेनबर्ग, 2011)। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यौन शोषण के अनुभव वाले व्यक्तियों में लिंग को ध्यान में रखे बिना वयस्क अवसाद में लगभग 35 प्रतिशत लिंग अंतर देखा जा सकता है (कटलर और नोलेन-होम्सेमा, 1991)। आमतौर पर लड़कियों को लड़कों की तुलना में अधिक यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है, लेकिन जब लड़कों को इस तरह के अनुभव होते हैं, तो उनमें अवसाद विकसित होने का जोखिम भी बढ़ जाता है।

ग) **जैविक कारक-** शोध से पता चलता है कि लड़कियों और महिलाओं में तनाव के प्रति तंत्रिका तंत्र की प्रतिक्रिया लड़कों और पुरुषों की तुलना में अधिक सक्रिय हो सकती है। यह अतिव्यक्त तनाव की प्रतिक्रिया महिलाओं में चिंता और अवसाद जैसे आंतरिक लक्षणों के उच्च स्तर को समझाने में मदद करती है। यौवनावस्था के दौरान महिलाओं में एस्ट्रोजन का बढ़ा हुआ स्तर उन्हें तनाव के दीर्घकालिक और गंभीर प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। इससे किशोर लड़कियों में आंतरिक मानसिक विकारों की अधिकता को भी समझा जा सकता है (जाहन-वेक्सलर, सर्टक्लिफ और मारसेड, 2008)।

11.6.2 आत्मघात

महिलाएँ आम तौर पर पुरुषों की तुलना में अधिक अवसाद से पीड़ित होती हैं, लेकिन पुरुषों में आत्महत्या की दर अधिक होती है। इसे "आत्मघात में लिंग विरोधाभास" कहा जाता है। इसका कारण यह है कि हालांकि आत्मघाती विचार और गैर-घातक प्रयास लड़कियों और महिलाओं में अधिक देखे जा सकते हैं, ये आमतौर पर

कम घातक होते हैं। इसके विपरीत, दुनिया के विभिन्न देशों में आत्महत्या से होने वाली मृत्यु अधिकतर लड़कों और पुरुषों में देखी जाती है (फीसीसका, बेटरहेम और क्रिस्टेंसेन, 2017)।

11.6.3 आहार विकारों में लिंग – भेद

महिलाओं में आहार विकार होने की संभावना पुरुषों की तुलना में 1.75 से 3 गुना अधिक होती है (हड्सन, हिरीपी, पोप और केशलर, 2007)। हालांकि अधिकतर शोध महिलाओं पर केंद्रित हैं, पुरुषों में आहार विकार कम पहचाने जा सकते हैं क्योंकि उनके लक्षण अलग हो सकते हैं। पुरुष अक्सर माँसपेशियों का वजन बढ़ाने, ड्रग्स या पूरक तत्वों के सेवन पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। एक अमेरिकी अध्ययन में पाया गया कि 17.9 प्रतिशत किशोर लड़कों को अपने शरीर के वजन और आकार को लेकर चिंता थी, और यह अधिक नशीली दवाओं के उपयोग तथा अवसाद से जुड़ा था (फील्ड और अन्य, 2014)।

11.7 सारांश

आनुवंशिक तौर हार्मोन संबंधी कारकों सहित जैविक कारक और व्यवहारात्मक कारक जैसे आहार, धूम्रपान, शराब पीने के साथ-साथ जोखिम लेने वाले व्यवहार स्वास्थ्य और अस्वस्थताओं की स्थितियों को निर्धारित करने में प्रमुख तत्व हैं। वे या तो बहुत नकुसान पहुंचा सकते हैं या वे सुरक्षात्मक भी हो सकते हैं। दीर्घकालीन जीवन में लिंग अंतर जैविक और सामाजिक कारकों के बीच अन्तःक्रिया से निर्धारित होता है। मृत्यु दर रुग्णता, विरोधाभास एक ऐसी स्थिति है जिसमें यद्यपि महिलाएँ अधिक समय तक जीवित रहती हैं, वे पुरुषों की तुलना में रुग्णता की उच्च दर प्रदर्शित करती हैं जबकि पुरुष महिलाओं की तुलना में मृत्युदर की उच्च दर दिखाते हैं। सांस्कृतिक मानदंड स्वास्थ्य चाहने वाले व्यवहारों में एक भूमिका निभाते प्रतीत होते हैं। महिलाओं के अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में नियमित जाँच के लिए डॉक्टरों के पास जाने की अधिक संभावना होती है और इसलिए उनमें स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का जल्द पता लगाया जा सकता है और उनका इलाज किया जा सकता है।

11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2. Addis, M. E., & Mahalik, J. R. (2003). Men, masculinity, and the context of help secking. American Psychologist, 58, 5-14.
3. Arcelus, J., Mitchell, A. J., Wales, J., & Nielsen, S. (2011). Mortality rates in patients with anorexia nervosa and other eating disorders. Archives of General Psychiatry, 68, 724-731.

4. Blackwell, D. L., Lucas, J. W., & Clarke, T. C. (2014). Summary health statistics for US adults: National health interview survey, 2012. Vital and Health Statistics. Series 10, Data from the National Health Survey, 260, 1-161.
5. Bosson, J.K., Vandello, J.A., Buckner, C.E. (2019) Psychology of Sex and Gender. California. Sage Publications, Inc (2007). Do recent life events and social

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न जैविक और सामाजिक कारकों की व्याख्या कीजिए।

2. क्या लिंग अंतर आत्महत्या और अवसाद में भूमिका निभाते है? चर्चा कीजिए।

इकाई-12 **हिंसा**

Violence

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 लैंगिक हिंसा की अवधारणा

12.3 लैंगिक हिंसा के प्रमुख रूप या श्रेणियां

112.4 लैंगिक हिंसा के कारण

12.5 लैंगिक हिंसा के प्रभाव

12.6 लैंगिक हिंसा की रोकथाम के उपाय

12.7 सारांश

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

12.9 बोध प्रश्न के उत्तर

12.10 संदर्भ ग्रंथ

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

हिंसा समाज की एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जो व्यक्ति, परिवार और पूरे समाज को प्रभावित करती है। जब किसी व्यक्ति या समूह के विरुद्ध जानबूझकर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक या सामाजिक नुकसान पहुँचाया जाता है, तो उसे हिंसा कहा जाता है। हिंसा केवल शारीरिक चोट तक सीमित नहीं होती, बल्कि डर, अपमान, दबाव और अधिकारों के हनन के रूप में भी प्रकट होती है। आधुनिक समाज में हिंसा के रूप लगातार बदल रहे हैं और यह घर, विद्यालय, कार्यस्थल, सड़क तथा ऑनलाइन माध्यमों तक फैल चुकी है। हिंसा और लैंगिक हिंसा एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए सामाजिक मुद्दे हैं। लैंगिक हिंसा, हिंसा का ही एक विशिष्ट रूप है। समाज में महिला,

पुरुष और अन्य लैंगिक पहचानों के बीच समानता व न्याय की अवधारणा को लैंगिक समानता कहा जाता है। किंतु वास्तविक जीवन में लैंगिक असमानता के अनेक रूप भेदभाव, असुरक्षा, संसाधनों तक असमान पहुँच, और हिंसा दिखाई देते हैं। इनमें से लैंगिक हिंसा गंभीर समस्याओं में से एक है, जो मुख्यतः महिलाओं और बालिकाओं को प्रभावित करती है, किंतु पुरुष और ट्रांसजेंडर समुदाय भी इससे अछूते नहीं हैं। लैंगिक हिंसा व्यक्ति के केवल शारीरिक कष्ट तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर भी गहरा प्रभाव डालती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में लैंगिक हिंसा को शक्ति, असमानता और पितृसत्तात्मक संरचना से जोड़कर समझा जाता है। लैंगिक मुद्दे आधुनिक समाज की एक गंभीर और संवेदनशील समस्या हैं।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा समझना। संभव होगा-

- लैंगिक हिंसा की अवधारणा
- लैंगिक हिंसा के प्रमुख रूप
- लैंगिक हिंसा के कारण
- लैंगिक हिंसा के प्रभाव
- लैंगिक हिंसा की रोकथाम के उपाय

12.2 लैंगिक हिंसा की अवधारणा

लैंगिक हिंसा वह सभी प्रकार की हिंसा है जो किसी व्यक्ति पर उसके लिंग के आधार पर की जाती है। यह हिंसा शारीरिक, मानसिक, यौन, आर्थिक या सांकेतिक किसी भी रूप में हो सकती है।

परिभाषा

संयुक्त राष्ट्र संगठन (UN) के अनुसार—

"जेण्डर-आधारित हिंसा का कोई ऐसा कार्य जिसका परिणाम या सम्भावित परिणाम महिलाओं की शारीरिक, यौनिक या मनोवैज्ञानिक क्षति हो अथवा महिलाओं को समस्याएँ उठानी पड़ें, जिनमें ऐसे कार्य करने के साथ-साथ इन्हें करने की धमकियाँ भी शामिल हैं, बलपूर्वक या स्वेच्छाचारिता का प्रयोग करते हुए महिलाओं को उनकी स्वतन्त्रता से वंचित करना, चाहे ये घटनाएँ सार्वजनिक रूप से की गईं हों या निजी जीवन में।"[1] (संयुक्त राष्ट्र, 1993)

नारीवादी विद्वानों का मत है कि लैंगिक हिंसा पुरुष वर्चस्व की उस प्रक्रिया का हिस्सा है जिसके माध्यम से महिलाओं और अन्य लैंगिक अल्पसंख्यकों को अधीन रखा जाता है। इस प्रकार, लैंगिक हिंसा व्यक्तिगत नहीं बल्कि संरचनात्मक और सामाजिक समस्या है।

जैसा की हम जानते हैं, कि लैंगिक हिंसा उन सभी कार्यों और व्यवहारों को दर्शाती है जिनके माध्यम से किसी व्यक्ति को उसके लिंग अथवा लैंगिक पहचान के आधार पर शारीरिक, मानसिक या यौनिक क्षति अथवा पीड़ा पहुँचाई जाती है। इसमें हिंसा की धमकी देना, बल प्रयोग करना तथा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सीमित करना भी शामिल है। "जेण्डर-आधारित हिंसा" शब्द का प्रयोग प्रायः "लैंगिक हिंसा" अथवा "महिलाओं के विरुद्ध हिंसा" के के अर्थ में किया जाता है, क्योंकि समाज में इस प्रकार की हिंसा का प्रभाव सबसे अधिक महिलाओं पर पड़ता है।

हालाँकि इसका यह अर्थ नहीं है कि महिलाओं के विरुद्ध किया गया प्रत्येक कार्य अनिवार्य रूप से लैंगिक (जेण्डर) आधारित हिंसा ही हो, और न ही यह मानना उचित है कि लैंगिक हिंसा केवल महिलाएँ के साथ होती हैं। सामाजिक परिवेश की कुछ परिस्थितियों में पुरुष तथा एलजीबीटीक्यू समुदाय के सदस्य भी लैंगिक हिंसा का सामना करते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं या मान्यताओं के अनुरूप आचरण नहीं करता है, तो उसके साथ भेदभाव, उत्पीड़न, मारपीट अथवा गंभीर हिंसा की घटनाएँ घटित हो सकती हैं।

इस प्रकार व्यापक अर्थ में, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उन विविध अपराधों और दुर्व्यवहारों को रेखांकित करती हैं, जो समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता, पूर्वाग्रह और शक्ति असंतुलन को स्पष्ट रूप से उजागर करते हैं।

12.3 लैंगिक हिंसा के प्रमुख रूप या श्रेणियां

लैंगिक हिंसा से आशय उन सभी प्रकार के कृत्यों से है जो किसी व्यक्ति के साथ उसके लिंग अथवा लैंगिक पहचान के आधार पर किए जाते हैं और जिनसे उसे शारीरिक, मानसिक, यौनिक या आर्थिक क्षति पहुँचती है। जेंडर-आधारित हिंसा को उसके स्वरूप और प्रभाव के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

1. शारीरिक हिंसा

शारीरिक हिंसा वह है जिसमें किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से शारीरिक चोट या कष्ट पहुँचाया जाता है। इसमें मारपीट, घरेलू हिंसा, हत्या, दहेज के लिए प्रताड़ना, तेज़ाब हमला आदि सम्मिलित हैं। यह हिंसा शरीर को प्रत्यक्ष रूप से नुकसान पहुँचाती है और कई बार जीवन के लिए भी खतरा बन जाती है।

2. यौनिक हिंसा

यौनिक हिंसा के अंतर्गत वे सभी कृत्य आते हैं जिनमें किसी व्यक्ति की यौन स्वायत्तता और गरिमा का उल्लंघन किया जाता है। बलात्कार, यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़, वैवाहिक बलात्कार, मानव तस्करी तथा कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न इसके प्रमुख उदाहरण

3. मानसिक या भावनात्मक हिंसा

मानसिक हिंसा में ऐसे व्यवहार शामिल होते हैं जो व्यक्ति के आत्मसम्मान, मानसिक संतुलन और भावनात्मक सुरक्षा को नुकसान पहुँचाते हैं। अपमान करना, धमकी देना, डराना, गाली-गलौज, चरित्र हनन तथा सामाजिक बहिष्कार मानसिक हिंसा के प्रमुख रूप हैं।

4. आर्थिक हिंसा

आर्थिक हिंसा उस स्थिति को दर्शाती है जिसमें किसी व्यक्ति को आर्थिक संसाधनों से वंचित किया जाता है या उसकी आय, संपत्ति और रोजगार पर नियंत्रण रखा जाता है। काम करने से रोकना, वेतन छीन लेना, संपत्ति और उत्तराधिकार के अधिकारों से वंचित करना आर्थिक हिंसा के उदाहरण हैं।

5. घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा परिवार या घरेलू संबंधों के भीतर घटित होती है। इसमें शारीरिक, मानसिक, यौनिक और आर्थिक सभी प्रकार की हिंसा सम्मिलित हो सकती है। यह हिंसा विशेष रूप से महिलाओं को प्रभावित करती है, किंतु कुछ परिस्थितियों में पुरुष और अन्य लैंगिक समूह भी इससे प्रभावित होते हैं।

6. सांस्कृतिक एवं परंपरागत हिंसा

सांस्कृतिक एवं परंपरागत हिंसा समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों और परंपराओं के नाम पर की जाती है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, ऑनर किलिंग, कन्या भ्रूण हत्या और डायन प्रथा जैसी कुरीतियाँ इस श्रेणी में आती हैं।

7. संस्थागत हिंसा

संस्थागत हिंसा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से होने वाले भेदभाव और उत्पीड़न को दर्शाती है। न्याय में देरी, कानूनों का कमजोर क्रियान्वयन, प्रशासनिक उदासीनता तथा शैक्षणिक या कार्यस्थल संस्थानों में लैंगिक भेदभाव इसके उदाहरण हैं।

8. डिजिटल या साइबर लैंगिक हिंसा

आधुनिक तकनीकी युग में इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाली हिंसा को डिजिटल या साइबर लैंगिक हिंसा कहा जाता है। ऑनलाइन उत्पीड़न, साइबर स्टॉकिंग, अश्लील संदेश भेजना और निजी चित्रों का दुरुपयोग इसके प्रमुख रूप हैं।

''लैंगिक हिंसा के विभिन्न रूप समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता और शक्ति असंतुलन को प्रतिबिंबित करते हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर संयुक्त राष्ट्र की विशेष रिपोर्ट (1994) के अनुसार, लैंगिक आधारित हिंसा को मुख्यतः तीन व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया है—

(1) परिवार के भीतर होने वाली हिंसा,

(2) समुदाय के स्तर पर होने वाली हिंसा, तथा

(3) राज्य अथवा सत्ता के अभिकर्ताओं द्वारा की गई या उनकी उपेक्षा से उत्पन्न हुई हिंसा।

भारतीय संदर्भ में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा के इन रूपों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(1) परिवार के भीतर होने वाली हिंसा

परिवार के भीतर होने वाली हिंसा में वे सभी प्रकार के अत्याचार शामिल हैं जो घरेलू परिवेश में घटित होते हैं। इसमें घरेलू हिंसा, घर के भीतर बच्चों के साथ यौन शोषण, दहेज से संबंधित हिंसा, बलात्कार तथा परिवार के सदस्यों द्वारा किया गया वैवाहिक या कौटुम्बिक बलात्कार सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, सम्मान की रक्षा के नाम पर किए गए अपराध, लिंग चयन के आधार पर गर्भपात, कन्या भ्रूण हत्या, महिलाओं के यौना हिंसा तथा ऐसी परंपरागत प्रथाएँ भी इस श्रेणी में आती हैं, जो समलैंगिक स्त्रियों, द्विलिंगी तथा किन्नर समुदाय के व्यक्तियों के संदर्भ में अपनाई जाती हैं। साथ ही, प्रजनन एवं यौन निर्णय की स्वतंत्रता का दमन भी लैंगिक हिंसा का ही हिस्सा माना जाता है।

(2) समुदाय में होने वाली हिंसा

समुदाय स्तर पर होने वाली हिंसा में वे सभी घटनाएँ शामिल हैं जो घर से बाहर, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में घटित होती हैं। कार्यस्थलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर होने वाले बलात्कार, यौन दुर्व्यवहार और यौन उत्पीड़न, तेज़ाब हमले, डायन बताकर महिलाओं को प्रताड़ित करना, सती प्रथा, सम्मान के नाम पर हत्या,

महिलाओं और बच्चों की तस्करी, बलपूर्वक वेश्यावृत्ति में धकेलना, विकलांग महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, साम्प्रदायिक हिंसा तथा आदिवासी और दलित महिलाओं के विरुद्ध किए गए अत्याचार इस श्रेणी में सम्मिलित किए जाते हैं।

(3) राज्य एवं सत्ता संरचनाओं से संबद्ध हिंसा

इस श्रेणी में वह हिंसा आती है जो सीधे राज्य की एजेंसियों द्वारा की जाती है या उनकी उदासीनता और लापरवाही के कारण घटित होती है। हिरासत (कस्टडी) में बलात्कार, उत्पीड़न और हत्या, युद्ध एवं संघर्ष की परिस्थितियों में महिलाओं के विरुद्ध जेंडर-आधारित हिंसा इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त, प्रवासी महिला श्रमिकों, शरणार्थी महिलाओं तथा देश के भीतर विस्थापित महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा, साम्प्रदायिक दंगों के दौरान महिलाओं पर किए गए अत्याचार तथा व्यापक स्तर पर घटित अन्य संगठित अपराध भी इसी श्रेणी में आते हैं।''[2]

(4) हिंसा के रूपों की अंतर्संबद्धता

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के ये रूप किसी कठोर या स्पष्ट सीमारेखा से अलग-अलग नहीं हैं। अनेक बार किसी एक हिंसक कृत्य को एक से अधिक श्रेणियों में रखा जा सकता है। ये सभी रूप परस्पर जुड़े हुए हैं और महिलाओं के मानवाधिकारों को सीमित करने, नियंत्रित करने तथा उन्हें अधीन बनाए रखने की प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

इसी प्रकार ''राम आहुजा अपनी पुस्तक "सामाजिक समस्याऐं" में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का वर्गीकरण छ: प्रकार से बताते हैं-

- हिंसा जो धन-अभिमुख होती है;
- हिंसा जो कमजोर पर सत्ता प्राप्त करना चाहती है;
- हिंसा जिसका भोग-विलास है;
- हिंसा जो अपराधकर्ता की विकृति के कारण होती है;
- हिंसा जो तनावपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों के कारण होती है; और
- हिंसा जो प्रेरित होती है।''[3]

प्रिय शिक्षार्थियों, जेंडर-आधारित हिंसा की इन श्रेणियों का अध्ययन समाज की वास्तविक समस्याओं को समझने और समानता आधारित समाज के निर्माण की दिशा में सोच विकसित करने में सहायक हो सकता है।

बोध प्रश्न-1

1. लैंगिक हिंसा का मुख्य आधार क्या है?

A. आयु B. वर्ग C. लिंग D. धर्म

12.4 लैंगिक हिंसा के कारण

लैंगिक हिंसा केवल निजी क्षेत्र (घर) तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह सार्वजनिक स्थानों, कार्यस्थलों, शैक्षणिक संस्थानों और डिजिटल माध्यमों (साइबर हिंसा) में भी देखने को मिलती है। यह हिंसा सामाजिक नियंत्रण, प्रभुत्व और अधीनता की मानसिकता को दर्शाती है। अत: लैंगिक हिंसा सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और लैंगिक भेदभाव से उत्पन्न एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जिसका प्रभाव व्यक्ति के साथ-साथ पूरे समाज के विकास पर पड़ता है। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगा कि लैंगिक हिंसा अचानक या बिना वजह नहीं होती हैं, इसके पीछे समाज, परिवार, सोच और व्यवस्था से जुड़े कई गहरे कारण होते हैं। इन कारणों को समझे बिना लैंगिक हिंसा को रोकना संभव नहीं है। लैंगिक हिंसा के प्रमुख कारण निम्नवत् है-

1. पितृसत्तात्मक सोच

समाज में पुरुष प्रभुत्व की ऐतिहासिक व्यवस्था महिलाओं को अधीन मानती है। समाज में लंबे समय से यह धारणा बनी रही है कि पुरुष अधिक शक्तिशाली और निर्णय लेने वाला होता है, जबकि महिलाओं और अन्य जेंडर समूहों को आज्ञाकारी और निर्भर माना जाता है। जब कोई महिला या किशोर इस तय की गई भूमिका को स्वीकार नहीं करता, तो उसके खिलाफ हिंसा की जाती है। यह सोच लैंगिक हिंसा का सबसे बड़ा आधार है।

2. रूढ़ जेंडर भूमिकाएँ

समाज यह तय कर देता है कि लड़कों और लड़कियों को कैसे कपड़े पहनने चाहिए, कैसे बात करनी चाहिए और कैसा व्यवहार करना चाहिए। "लड़के रोते नहीं", "लड़कियाँ कमजोर होती हैं" जैसी सोच से हिंसा को वैधता प्रदान करती है। जो बच्चे या किशोर इन अपेक्षाओं से अलग होते हैं, उन्हें मज़ाक, ताने, अपमान या शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ता है।

3. सम्मान के नाम पर नियंत्रण

कई परिवारों और समुदायों में महिलाओं की इज़्ज़त को उनके कपड़ों, व्यवहार और रिश्तों से जोड़ दिया जाता है। इस मानसिकता के कारण महिलाओं की आज़ादी पर रोक लगाई जाती है और "इज़्ज़त या सम्मान बचाने" के नाम पर मारपीट, ज़बरदस्ती और गंभीर हिंसा या हत्या तक की जाती है।

4. कुरीति एवं कुप्रथाएं

दहेज प्रथा, बाल विवाह, जबरन विवाह, शिक्षा से वंचित करना जैसी परंपराएँ महिलाओं को कमज़ोर बनाती हैं। इन प्रथाओं के कारण महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए आवाज़ नहीं उठा पातीं और हिंसा सहने को मजबूर हो जाती हैं।

5. आर्थिक निर्भरता

जब किसी व्यक्ति की आर्थिक ज़रूरतें पूरी तरह दूसरों पर निर्भर होती हैं, तो वह हिंसा सहने के बावजूद चुप रह सकता है। आर्थिक रूप से असहाय महिलाएँ और किशोर अक्सर डर, मजबूरी और असुरक्षा के कारण हिंसक संबंधों से बाहर नहीं निकल पाते है।

6. शिक्षा और जागरूकता की कमी

लैंगिक समानता, सम्मान और अधिकारों के बारे में सही जानकारी न होना भी हिंसा को बढ़ाता है। जब बच्चों को शुरू से ही समानता और संवेदनशीलता नहीं सिखाई जाती, तब व भेदभाव को सामान्य मानने लगते हैं।

7. पारिवारिक वातावरण

जो बच्चे अपने घर में रोज़ झगड़े, गाली-गलौज या मारपीट देखते हैं, वे आगे चलकर हिंसा को सामान्य समझ सकते हैं। ऐसा वातावरण बच्चों के व्यवहार और सोच को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

8. नशा और मानसिक तनाव

नशे की आदत, बेरोज़गारी, मानसिक तनाव और गुस्से पर नियंत्रण न होना भी कई बार घरेलू हिंसा का कारण बनता है।

9. कमजोर कानून और सामाजिक चुप्पी

कानूनी प्रावधान होने के बावजूद न्याय प्रक्रिया में देरी अपराधियों का हौसला बढ़ाती है। कानूनी अधिकार एवं वैकल्पिक सहायता से अनभिज्ञता या जागरूकता में कमी भी हिंसा के कारणों में से एक है।

10. ऑनलाइन जुड़ी समस्याएँ

सोशल मीडिया पर ट्रोलिंग, साइबर बुलिंग भी लैंगिक हिंसा के नए रूप या कारण हैं। इनका बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य और शिक्षा पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

लैंगिक हिंसा किसी एक व्यक्ति की गलती नहीं, बल्कि गलत सोच, असमान व्यवस्था और सामाजिक चुप्पी का परिणाम है। इसे रोकने के लिए समानता, सम्मान, शिक्षा और संवेदनशीलता को बढ़ावा देना आवश्यक है।

12.5 लैंगिक हिंसा के प्रभाव

लैंगिक हिंसा केवल किसी एक व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि पूरे परिवार, समाज और राष्ट्र को प्रभावित करती है। इसके प्रभाव तात्कालिक भी होते हैं और दीर्घकालिक भी हो सकते हैं। यह हिंसा व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने के साथ-साथ उसकी शिक्षा, रोजगार, सामाजिक संबंधों और आत्म-सम्मान को भी गहराई से प्रभावित करती है। इसलिए लैंगिक हिंसा को केवल व्यक्तिगत समस्या न मानकर एक गंभीर सामाजिक मुद्दे के रूप में समझना आवश्यक है।

2. शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव- लैंगिक हिंसा का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति के शरीर पर दिखाई देता है। इसमें शरीर पर चोट लगना, हड्डियाँ टूटना, जलन या स्थायी शारीरिक विकलांगता यौन हिंसा के कारण यौन संचारित रोग (STDs), अनचाही गर्भावस्था बार-बार होने वाली हिंसा से दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याएँ कई मामलों में पीड़ित इलाज से भी वंचित रह जाते हैं, क्योंकि वह डर, शर्म या सामाजिक दबाव के कारण सामने नहीं आ पाती है।

3. मानसिक और भावनात्मक प्रभाव- लैंगिक हिंसा के मानसिक प्रभाव अक्सर शारीरिक घावों से कहीं अधिक गहरे होते हैं। इनमें व्यक्ति को भय, चिंता और अवसाद, आत्म-विश्वास में कमी, नींद न आना, तनाव, चिड़चिड़ापन आत्महत्या के विचार, अपमान और डर में जीने से व्यक्ति अपने आपको दोषी मानने लगता है, जबकि वास्तव में वह हिंसा का शिकार होता है।

4. शैक्षणिक प्रभाव- छात्रों और किशोरों पर लैंगिक हिंसा का सीधा असर उनकी शिक्षा पर पड़ता है। विशेष रूप से लड़कियाँ और लैंगिक अल्पसंख्यक, असुरक्षा और डर के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जिससे उनके भविष्य के अवसर सीमित हो जाते हैं। हिंसा से प्रभावित किशोर या किशोरी की पढ़ाई में रुचि कम हो जाती है। कक्षा में भागीदारी घटती है और परीक्षा परिणाम कमजोर हो जाते हैं। कई बार उन्हें स्कूल या कॉलेज छोड़ना पड़ता है।

5. सामाजिक संबंधों पर प्रभाव- लैंगिक हिंसा से प्रभावित व्यक्ति समाज से कटाव, परिवार और मित्रों से दूरी बना लेता है। ऐसे व्यक्तियों के मन में विवाह और रिश्तों के प्रति एक डर उत्पन्न हो जाता है। कई पीड़ित सामाजिक कलंक के डर से चुप रहते हैं, जिससे उनका सामाजिक समर्थन तंत्र कमजोर हो जाता है।

6. आर्थिक प्रभाव- लैंगिक हिंसा के आर्थिक परिणाम भी अत्यंत गंभीर होते हैं। हिंसा के कारण व्यक्ति का काम पर ध्यान नहीं लग पाता, जिससे उसकी नौकरी छूट सकती है या कार्य-क्षमता प्रभावित हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक निर्भरता बढ़ जाती है तथा गरीबी और असुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

7. पारिवारिक और पीढ़ीगत प्रभाव- लैंगिक हिंसा केवल एक पीढ़ी तक सीमित नहीं रहती है। बच्चे हिंसा को "सामान्य" समझने लगते हैं जिससे अगली पीढ़ी में हिंसक व्यवहार दोहराए जाने का खतरा रहता है। परिवार में डर और अस्थिरता का माहौल बना रहता है। इस प्रकार लैंगिक हिंसा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलने वाला चक्र बन सकती है।

8. सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव- समाज पर लैंगिक हिंसा के व्यापक प्रभाव होते हैं। सामाजिक असमानता और भेदभाव में वृद्धि होती है।

लैंगिक हिंसा के प्रभाव बहुआयामी और दीर्घकालिक होते हैं। यह न केवल व्यक्ति के शरीर और मन को चोट पहुँचाती है, बल्कि समाज की संरचना और विकास को भी कमजोर करती है।

बोध प्रश्न- 2

नीचे दो कथन दिए गए है:

कथन I: लैंगिक हिंसा केवल शारीरिक हिंसा तक सीमित नहीं है।

कथन II: मानसिक और आर्थिक उत्पीड़न भी लैंगिक हिंसा के रूप हैं।

उपर्युत कथनों के आलोक में निम्नलिखित विकल्पों में सही उत्तर चुनें:

A. दोनों कथन सही हैं

B. दोनों गलत हैं

C. कथन I सही, II गलत

D. कथन I गलत, II सही

12.6 लैंगिक हिंसा की रोकथाम के उपाय

लैंगिक हिंसा समाज की एक गंभीर और बहुआयामी समस्या है, जो महिलाओं तथा लैंगिक अल्पसंख्यकों को असमान रूप से प्रभावित करती है। यह हिंसा शारीरिक, मानसिक, यौन, आर्थिक और सामाजिक रूपों में प्रकट होती है। लैंगिक हिंसा की रोकथाम केवल कानूनी उपायों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके लिए सामाजिक दृष्टिकोण, शिक्षा व्यवस्था, पारिवारिक संरचना और नीतिगत हस्तक्षेपों में व्यापक परिवर्तन आवश्यक है।

1. लैंगिक हिंसा की रोकथाम की शुरुआत व्यक्ति से होती है। प्रत्येक व्यक्ति में जेंडर समानता, पारस्परिक सम्मान और सहमति की समझ विकसित करना आवश्यक है। अपने अधिकारों और सीमाओं को पहचानना तथा दूसरों की सीमाओं का सम्मान करना हिंसा को रोकने का आधार है। इसके साथ ही आत्म-नियंत्रण, गुस्सा प्रबंधन, संवाद कौशल और सहानुभूति जैसे गुण हिंसक व्यवहार को कम करने में सहायक होते हैं।

2. परिवार सामाजिकरण की प्राथमिक संस्था है, जहाँ बच्चों में मूल्य और व्यवहार विकसित होते हैं। यदि परिवार में लड़के और लड़कियों के साथ समान व्यवहार किया जाए, तो लैंगिक भेदभाव की जड़ कमजोर होती है। घरेलू कार्यों, शिक्षा, संसाधनों और निर्णय-निर्माण में समान भागीदारी से समानता की भावना विकसित होती है। परिवार में हिंसा को अनुशासन, परंपरा या निजी मामला मानना लैंगिक हिंसा को बढ़ावा देता है, इसलिए इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया जाना चाहिए।

3. विद्यालय और महाविद्यालय लैंगिक हिंसा की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पाठ्यक्रम में जेंडर समानता, मानवाधिकार और सहमति से संबंधित विषयों को शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षकों को जेंडर-संवेदनशील प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है, ताकि वे छेड़छाड़, बुलिंग और साइबर हिंसा जैसी समस्याओं की पहचान कर सकें। इसके अतिरिक्त, शिकायत निवारण तंत्र, परामर्श सेवाएँ और सुरक्षित शैक्षणिक वातावरण विद्यार्थियों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं।

4. समाज में प्रचलित दहेज प्रथा, बाल विवाह और सम्मान (इज़्ज़त) के नाम पर नियंत्रण जैसी कुप्रथाएं लैंगिक हिंसा को बनाए रखती हैं। इनके विरुद्ध जन-जागरूकता अभियान, सामुदायिक संवाद और मीडिया की सक्रिय भूमिका आवश्यक है। सामाजिक संगठनों, स्थानीय नेतृत्व और धार्मिक संस्थाओं के सहयोग से समानता और सम्मान आधारित सोच को बढ़ावा दिया जा सकता है।

5. लैंगिक हिंसा की रोकथाम के लिए सशक्त कानून और उनका प्रभावी क्रियान्वयन अनिवार्य है। भारत में घरेलू हिंसा अधिनियम, POCSO अधिनियम और भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराएँ इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं। पुलिस और न्याय व्यवस्था को जेंडर-संवेदनशील बनाकर पीड़ितों को शीघ्र और निष्पक्ष न्याय

उपलब्ध कराना आवश्यक है। फास्ट-ट्रैक न्यायालय और पीड़ित-अनुकूल प्रक्रियाएँ रोकथाम में सहायक होती हैं। लैंगिक हिंसा की रोकथाम केवल हिंसा को रोकने तक सीमित नहीं है, बल्कि हिंसा से प्रभावित व्यक्तियों को सहायता, सुरक्षा और पुनर्वास प्रदान करना भी उतना ही आवश्यक है। इसके लिए सरकार और समाज द्वारा विभिन्न सहायता तंत्र विकसित किए गए हैं। इसके अंतर्गत चिकित्सा सहायता, मानसिक परामर्श, कानूनी सहायता और आश्रय गृहों की व्यवस्था शामिल है। पुनर्वास और सामाजिक समर्थन से पीड़ितों में आत्मविश्वास विकसित होता है और वे हिंसक परिस्थितियों से बाहर निकलने में सक्षम होते हैं। लैंगिक हिंसा की रोकथाम और पीड़ितों को संरक्षण प्रदान करने के लिए भारत में विभिन्न कानूनी प्रावधान मौजूद हैं। वन स्टॉप सेंटर सरकार द्वारा स्थापित ऐसी संस्थाएँ हैं, जहाँ लैंगिक हिंसा से पीड़ित महिलाओं को एक ही स्थान पर बहु-आयामी सहायता प्रदान की जाती है। वन स्टॉप सेंटर द्वारा पीड़ित महिलाओं को तत्काल चिकित्सा सहायता, कानूनी परामर्श, पुलिस सहायता, अस्थायी आश्रय तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श प्रदान किया जाता है। इसी प्रकार महिला हेल्पलाइन 1091 एक आपातकालीन सेवा है। जिसके माध्यम से महिलाएँ हिंसा, उत्पीड़न या खतरे की स्थिति में तुरंत सहायता प्राप्त कर सकती हैं। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 महिलाओं को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है। बच्चों के विरुद्ध यौन अपराधों से संरक्षण के लिए POCSO अधिनियम, 2012 लागू किया गया है। इसके अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता (IPC) की विभिन्न धाराएँ, जैसे छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न और बलात्कार से संबंधित प्रावधान, अपराधियों को दंडित करने का आधार प्रदान करती हैं। इन कानूनों का उद्देश्य पीड़ितों को न्याय, सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करना है।

7. महिलाओं और किशोरियों का आर्थिक सशक्तिकरण लैंगिक हिंसा की रोकथाम का एक प्रभावी उपाय है। शिक्षा, कौशल विकास और रोजगार के अवसर प्रदान करने से आर्थिक निर्भरता कम होती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता व्यक्ति की निर्णय-क्षमता बढ़ाती है और हिंसा सहने की मजबूरी को कम करती है।

लैंगिक हिंसा की रोकथाम एक समग्र और दीर्घकालिक प्रक्रिया है। जब व्यक्ति, परिवार, शिक्षा संस्थान, समाज और राज्य मिलकर समानता, न्याय और मानवीय गरिमा पर आधारित वातावरण का निर्माण करते हैं, तभी लैंगिक हिंसा को प्रभावी रूप से रोका जा सकता है।

12.7 सारांश

इस इकाई में लैंगिक हिंसा की अवधारणा, उसके विभिन्न रूपों, कारणों, प्रभावों तथा रोकथाम और कानूनी प्रावधानों का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है। इकाई से स्पष्ट होता है कि लैंगिक हिंसा केवल व्यक्तिगत व्यवहार का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक असमानता, पितृसत्तात्मक सोच और शक्ति-संबंधों से जुड़ी एक संरचनात्मक समस्या है। इसके दुष्प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक स्थिति तथा

सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। लैंगिक हिंसा की रोकथाम के लिए शिक्षा, पारिवारिक समानता, सामाजिक जागरूकता, सशक्त कानूनों और प्रभावी सरकारी सहायता तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका है। अंततः, लैंगिक हिंसा मुक्त समाज के निर्माण के लिए समानता, सम्मान और न्याय को सामाजिक मूल्यों के रूप में अपनाना आवश्यक है।

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

हिंसा- हिंसा से तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह को जानबूझकर शारीरिक, मानसिक या सामाजिक हानि पहुँचाने से है। दूसरे शब्दों में हिंसा वह सामाजिक व्यवहार है जिसके माध्यम से शक्ति, नियंत्रण या वर्चस्व स्थापित किया जाता है।

12.9 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न-1 1- C. लिंग

बोध प्रश्न-2 1- A. दोनों कथन सही हैं

12.10 संदर्भ ग्रंथ

1. United Nations. (1993). Declaration on the Elimination of Violence against Women.

2. Manglik, R. (2024). जेंडर, विद्यालय एवं समाज (E-book). EduGorilla Publication.

3. आहूजा, राम (2011). सामाजिक समस्याएँ (संशोधित संस्करण). जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.

12.11 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

पुस्तक

1. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण, एवं राठौर, जे. एस. (2024). लिंग एवं समाज (सिद्धांत तथा व्यवहार में). एस. बी. पी. डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. नटाणी, प्रकाश नारायण, एवं गौतम, ज्योति. (n.d.). लिंग एवं समाज. रिसर्च पब्लिकेशन.
3. सिंह, डॉ. अमिता, (2015). लिंग एवं समाज. विवेक प्रकाशन .

अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट

1. Women's International Democratic Federation. (n.d.). IVth Congress. Author.

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लैंगिक हिंसा की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2. लैंगिक हिंसा के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

3. लैंगिक हिंसा के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 13 **लिंगानुपात**
Sex-Ratio

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 लिंग और जेंडर क्या है?

13.3 लिंगानुपात का अर्थ एवं परिभाषा

13.4 लिंगानुपात की विशेषताऐं

13.5 लिंगानुपात को कैसे निकालते हैं?

13.6 लिंगानुपात के प्रमुख प्रकार

13.7 राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति

13.8 लिंगानुपात असंतुलन के कारण

13.9 असंतुलित लिंगानुपात के कारण

13.10 संतुलित लिंगानुपात के लिए उपाय

13.11 सारांश

13.12 पारिभाषिक शब्दावली

13.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना –

प्रत्येक समाज की मजबूती एवं संतुलन को बनाये रखने के लिए महिलाओं और पुरूषों का होना नितांत आवश्यकता होता है। यदि किसी समाज में महिलाओं की संख्या कम और पुरुषों की संख्या अधिक हो, तब इससे समाज का संतुलन बिगड़ जाता है। इसी संतुलन और असंतुलन को समझने के लिए लिंगानुपात (Sex-Raito) को एक महत्वपूर्ण सूचक के रूप में प्रयोग किया जाता है। साधारणतया लिंगानुपात से आशय किसी क्षेत्र में प्रति 1000

पुरुषों पर महिलाओं की संख्या से है। उदाहरण के तौर पर किसी क्षेत्र विशेष में प्रति 1000 पुरूषों पर 960 महिलाऐं हैं, तब उस क्षेत्र का लिंगानुपात 960 माना जायेगा। लिंगानुपात का आशय केवल महिलाओं की संख्या से नहीं है। लिंगानुपात से सीधा आशय समाज में लड़कियों के जन्म को महत्व, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, सामाजिक सोच और लड़कियों के प्रति भेदभाव की स्थिति से लगाया जा सकता है।

ऑखिर लिंगानुपात आज क्यों एक महत्वपूर्ण विषय है? इसके विषय में चर्चा करना सर्वप्रथम आवश्यक हो जाता है। भारत देश में अलग-अलग जाति, धर्म, गोत्र, वंश, कुल और परम्पराओं को मानने वाले लोग रहते हैं। इन लोगों के अपने-अपने विश्वास व मान्यताएँ हैं। इन लोगों में से बहुत से लोग अपने वंश, कुल और जाति की परम्परा को पुत्र से जोड़कर देखते हैं। इनका मानना है कि पुत्र इनके परिवार, वंश और कुल को आगे ले जायेगा। समाज में इस तरह की मानसिकता रखने वाले लोगों के कारण लिंगानुपात का संतुलन बिगड़ जाता है। जिससे समाज के सामने एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। लिंगानुपात की अवधारणा को समझने से पूर्व लिंग (Sex) और जेंडर (Gender) को समझना आवश्यक हो जाता है।

13.1 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थियों आप निम्नलिखित बिंदुओं पर ज्ञानार्जन कर पायेंगे-

- आप लिंग और जेंटर में अंतर समझ पायेगें।
- लिंगानुपात का अर्थ और विशेषताऐं समझ पायेगें।
- लिंगानुपात निकालने की विधि को समझ पायेगें।
- लिंगानुपात के प्रमुख प्रकारों पर ज्ञानार्जन कर पायेगें।
- राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति और लिंगानुपात असंतुलन के कारणों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पायेगें।
- समाज में असंतुलित लिंगानुपात से पड़ने वाले परिणामों के विषय में अपनी समझ को मजबूत कर पायेगें।
- संतुलित लिंगानुपात को बनाये रखने के उपायों पर भी अपनी व्यवहारिक समझ को मजबूत बना पायेगें।

13.2 लिंग और जेंडर क्या है? (What is Sex and Gender?)-

(i) लिंग (Sex) लिंग का निर्धारण जन्म से होता है। इसका निर्धारण शरीर की जैविक संरचना पर आधारित होता है। जैसे प्रजनन अंग और हार्मोन इसके निर्धारण के आधार होते हैं।

(ii) जेंडर (Gender)- इसके निर्धारण का अधार समाज द्वारा निर्धारित होता है। पुरुष और महिलाओं से अपेक्षित भूमिकाओं के निवर्हन को इसमें शामिल किया गया है। सामाजिक मान्यता के अनुसार लड़के, लड़कियों से मजबूत होते हैं। घर चलाने का कार्य पुरूष का है। लड़कियों को घर के काम करने चाहिए। इस तरह की रूढ़ धारणाएँ समाज द्वारा निर्मित की गई हैं। भारतीय समाज में जेंडर से संबंधित रूढ़ प्रारूप को निम्नलिखित तालिका में देखा जा सकता है। इस तालिका में महिलाओं और पुरुषों से संबंधित रूढ़ प्रारूप को दर्शाया गया है।[1]

रुढ़ प्रारूप

क्र.सं.	महिलाओ के लिए रुढ़ प्रारूप	पुरुषों के लिए रुढ़ प्रारूप
1	परतंत्र	स्वतंत्र
2	कमजोर	शक्तिशाली
3	भावुक	तार्किक
4	पालन करने वाली	निर्णय लेने वाला
5	घर की देखभाल करने वाली	कमाने वाला
6	मृदुभाषी	मुखर
7	सजग	साहसी
8	भयग्रस्त	बहादुर

लिंगानुपात मूलतः लिंग (Sex) पर आधारित एक सूचक है। लिंगानुपात से जुड़ी समस्याऐं सामाजिक सोच और सामाजिक भेदभाव को उजागर करने का कार्य करती हैं। जब समाज में लड़कों की अधिकता और लड़कियों की कमी हो जाती है, तब इसमे परिणामस्वरूप लिंगानुपात प्रभावित हो जाता है।

13.3 लिंगानुपात का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Sex Raito)-

लिंगानुपात से आशय किसी समाज, राज्य और देश के प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या से है। यह उस समाज, राज्य और देश में महिलाओं और पुरुषों की जनसंख्या को इंगित करता है। लिंगानुपात सिर्फ जनसंख्या से संबंधित तथ्य नहीं है। यह हमें समाज में महिलाओं की स्थिति, लैगिक समानता, महिला स्वास्थ्य, महिला शिक्षा, महिला सुरक्षा और महिलाओं को मिलने वाले अवसरों की स्थिति को भी दर्शाने का कार्य करता

है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी स्थान विशेष में 1000 पुरूषों पर 950 महिलाऐं हैं, तो वहां का लिंगानुपात 950 माना जायेगा।

परिभाषाएँ- लिंगानुपात से संबंधित परिभाषाऐं निम्नलिखित हैं।

- **नीरा देसाई के अनुसार**" लिंगानुपात केवल जनसंख्या का आंकड़ा न होकर, समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य धारणाओं का दर्पण है।[2]
- **भारतीय जनगणना रिर्पोट के अनुसार** "लिंगानुपात वह संख्यात्मक अनुपात है, जो किसी समाज में 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या को दर्शाता है।"[3]
- **महिला और बाल कल्याण मंत्रालय के अनुसार** "लिंगानुपात समाज की लैंगिक संरचना को समझने का एक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय मापदंड है। यह महिलाओं की सामाजिक स्थिति, पोषण, स्वास्थ्य और अवसरों की समानता को प्रतिबिंबित करता है।"[4]

13.4 लिंगानुपात की विशेषताऐं (Factures of The Sex Ratio)-

लिंगानुपात समाज का एक महत्वपूर्ण मापदंड है। लिंगानुपात के आधार पर किसी समाज की लैंगिक समानता, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य, महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है। संतुलित लिंगानुपात किसी समाज या देश को प्रगतिशील समाज की पहचान देता है। इस इकाई में लिंगानुपात की विशेषताओं पर चर्चा की जा रही है।

(i) जनसांख्यिकी संकेतक (Demographic Indicator)- (i) लिंगानुपात समाज का जनसांख्यिकीय संकेतक होता है यह समाज की जनसांख्यिकीय संरचना में महिला-पुरुष अनुपात को स्पष्ट करता है।

(ii) लिंगानुपात किसी समाज के लिए उस समाज की सामाजिक स्थिति का दर्पण (Mirror of Gender Status) कहा जाता है। जिस समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति उत्तम होती है, उस समाज में सामान्यतः संतुलित लिंगानुपात पाया जाता है।

(iii) महिलाओं की को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अवसर और लैंगिक समानता की मजबूती स्थिति सामाजिक विकास का सूचक (Indicator of Social Development) होता है।

(iv) समाज में लिंगानुपात में गिरावट, लड़कों को वरीयता, कन्या भ्रूण हत्या और महिलाओं के प्रति भेदभाव समाज में लैंगिक भेदभाव (Indicator of Gendre Discrimination) का संकेत देते हैं।

(v) 0-6 वर्ष आयु का लिंगानुपात यह अनुमान लगाने में मदद करता है कि आने वाले वर्षों में सामान्य लिंगानुपात किस दिशा में जायेगा[5]।

(vi) लिंगानुपात भविष्य की सामाजिक स्थिरता को प्रभावित करने वाला तत्व है। लिंगानुपात में असंतुलन से विवाह, परिवार, जनसांख्यिकीय संरचना और सामाजिक अस्थिरता जैसे संकट बढ़ते हैं[6]।

13.5 लिंगानुपात को कैसे निकालते हैं? (How is the Sex Ratio Calculated)-

शिक्षार्थियों इस इकाई की शुरूवात में आपने लिंगानुपात के विषय में अपना ज्ञानार्जन किया, और आपने यह समझा कि किस प्रकार किसी समाज में संतुलित लिंगानुपात उस समाज को आगे ले जाने में कैसे सहायक होता है। आप लोगों के दिमाग में प्रश्न उठ रहा होगा कि ऑखिर किसी क्षेत्र, समाज, राज्य और देश में रहने वाले महिला-पुरूषों के अनुपात को कैसे निकाला जाता है? यहां पर लिंगानुपात को निकालने की विधि पर चर्चा की जा रही है।

लिंगानुपात की गणना को निकालने के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

लिंगानुपात= उस स्थान विशेष की कुल महिलाओं की संख्या ÷ उस स्थान विशेष की **कुल पुरूषों की संख्या X 1000**

उदाहरण- माना किसी जिले का लिंगानुपात निकालना हो, उस जिले में 2,28000 महिलाएं हैं और 2,40000 पुरूष हैं, तब आप सर्वप्रथतम इस जिले की कुल महिला जनसंख्या को कुल पुरूषों की जनंसख्या से विभाजित करेंगे और जो परिणाम निकलेगा उसकों 1000 से गुणा करोगे।

जैसे- $\frac{\text{2,28000 महिलाऐं}}{\text{2,40000 पुरूष}}$ 0-95X100 = 950 महिलाऐं

इस प्रकार इस जिले में 1000 पुरूषों पर 950 महिलाऐं हैं।

13.6 लिंगानुपात के प्रमुख प्रकार (Major types of Sex Ratio)-

लिंगानुपात की गणना के लिए, लिंगानुपात के विभिन्न प्रकार होते हैं। लिंगानुपात के प्रमुख प्रकारों पर इस इकाई में चर्चा की जा सकती है।

(i) **सामान्य लिंगानुपात (Normal Sex Ratio)-** सामान्य लिंगानुपात किसी क्षेत्र विशेष की सम्पूर्ण जनसंख्या में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या से होता है। सामान्य लिंगानुपात से किसी क्षेत्र या समाज विशेष में महिलाओं और पुरूषों की संख्या के बीच संतुलन या असंतुलन की स्थिति ज्ञात हो जाती है। सामान्य लिंगानुपात किसी समाज, जनपद, राज्य और देश की लैंगिक स्थिति का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है।

(ii) **शिशु लिंगानुपात (Child Sex Ratio)-** शिशु लिंगानुपात 0 से 6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में प्रति 1000 बालकों पर बालिकाओं की संख्या को प्रदर्शित करता है। यह लिंगानुपात भविष्य के सामान्य लिंगानुपात का संकेतक माना जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी जनपद में 0 से 6 आयु वर्ग में 32000 बालक और 29000 बालिकाएँ हैं तब उस जनपद का शिशु लिंगानुपात-

29000 (बालिकाएं)

X 1000 = 906 होगा।

32000 (बालक)

इस लिंगानुपात के आकडो से भविष्य में, सामान्य लिंगानुपात में भी समस्या उत्पन्न हो सकती है।

(iii) आयु-विशिष्ट लिंगानुपात (Age Specific Sex Ratio)- आयु विशिष्ट लिंगानुपात से अभिप्रायः है कि, किसी विशेष आयु वर्ग में 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 100 इससे यह पता चल जाता है कि कौन-कौन सी आयु वर्ग में महिलाओं की संख्या अधिक है या कम है। उदाहरण के तौर पर आप ने किसी शहर की 20 से 24 आयु वर्ग की महिलाओं की लिंगानुपात की स्थिति को जानना हो, और आप उस शहर में रहने वाली 20-24 आयु वर्ग की महिलाओं और पुरूषों की संख्या जानते हैं। तब आप उस शहर का लिंगानुपात आसानी से निकाल लेंगे।

$$\text{लिंगानुपात} = \frac{\text{शहर में रहने वाली 20-24 आयु वर्ग की कुल महिलाओं की संख्या}}{\text{शहर में रहने वाले 20-24 आयु वर्ग के कुल पुरुषों की संख्या X 1000}}$$

जन्म लिंगानुपात (Sex Ratio at Birth)- जन्म लिंगानुपात जन्म लेने वाले बच्चों में प्रति 1000 बालकों पर जन्म लेने वाली बालिकाओं की संख्या से है। यह जन्म स्तर पर लैंगिक भेदभाव और लिंग चयन की प्रवृत्ति को दर्शाता है। सामान्य प्रकृति में जन्म लिंगानुपात 943-950 के आस-पास होता है। यानि 950 बालकों पर 943 बालिकाएँ होती है। यदि किसी क्षेत्र विशेष में नवजात बालिकाओं की संख्या नवजात बालकों की तुलना में कम हो, तो वहां पर लिंग चयनात्मक गर्भपात और पुत्रों को वरीयता का संकेत दृष्टिगोचर हो सकता है।

(iv) **कार्यबल लिंगानुपात (Workforce Sex Ratio)-** इसका अर्थ कामकाजी जनसंख्या में प्रति 1000 कामकाजी पुरूषों पर कामकाजी महिलाओं की संख्या से है। यह समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में यह बताता है कि रोजगार के अवसरों में कामकाजी महिलाओं की कितनी भागेदारी है।

(v) **वृद्ध लिंगानुपात (Old Age Sex Ratio)-** वृद्ध लिंगानुपात 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के लोगों में प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या को दर्शाता है। यह लिंगानुपात वृद्ध महिलाओं और वृद्ध पुरुषों की स्थिति को बताने का कार्य करता है। सामान्यतया महिलाओं की जीवन प्रत्याशा पुरूषों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए वृद्ध लिंगानुपात कई समाजों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं के पक्ष में होता है।

13.7 भारत के राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति [7] (Status of Sex Ratio in the states of India)-

भातर की जनगणना रिर्पोट 2011 के अनुसार हमारे देश का औसत लिंगानुपात 943 है। जनगणना 2011 के अनुसार केरल राज्य सबसे अधिक लिंगानुपात वाला राज्य है। इसके साथ ही हरियाणा राज्य में सबसे कम लिंगानुपात है। जनगणना 2011 की रिर्पोट के अनुसार भारतीय राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की लिंगानुपात की स्थिति को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।[8]

राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में लिंगानुपात

क्र०सं.	राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	लिंगानुपात
1	केरल	1084
2	पांडुचेरी	1037
3	तमिलनाडु	996
4	आंध्र प्रदेश	993
5	छत्तीगढ़	991
6	मेघालय	989
7	मणिपुर	985
8	उड़ीसा	979
9	मिजोरम	976
10	हिमांचल प्रदेश	974
11	कर्नाटक	973
12	गोवा	973
13	उत्तराखण्ड	963
14	त्रिपुरा	960

15	आसाम	958
16	झाडखण्ड	948
17	पश्चिम बंगाल	950
18	लक्षदीप	946
19	महाराष्ट्र	929
20	बिहार	918
21	गुजरात	919
22	राजस्थान	928
23	पंजाब	895
24	हरियाणा	879
25	उत्तर प्रदेश	912
26	जम्मू कश्मीर	889

13.8 लिंगानुपात असंतुलन के कारण (Causes of Sex Ratio Imbalance)-

असंतुलित लिंगानुपात समाज की एक बड़ी समस्या है। लिंगानुपात के असंतुलन के पीछे कई कारण जिम्मेदार हैं। लिंगानुपात असंतुलन के लिए जिम्मेदार कारकों पर इस इकाई में चर्चा की जा रही है।

(i) **पितृसत्तात्मक सोच (Patriarchal Thinking)-** आज हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जी रहे हैं। इस विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में भी समाज के लोगों की मानसिकता पितृसत्तात्मक है। ऐसे सोच वाले लोग वंश और कुल को बढ़ाने के लिए पुत्रों के जन्म को वरीयता देते हैं और इनका मानना है कि पुत्र इनके बुढ़ापे का सहारा और उत्तराधिकारी होंगे। इस मानसिकता के कारण ये लोग लड़कियों को पराया धन मानते हैं। इस तरह की मानसिकता बालिकाओं के जन्म को अच्छा नहीं मानती हैं। कभी-कभी तो इस तरह की मानसिकता रखने वाले लोग गर्भ में ही कन्या भ्रूण की हत्या कर देते हैं।

(ii**) दहेज प्रथा (Dowry System)-** समाज में लिंगानुपात के असंतुलन के पीछे, दहेज प्रथा भी एक मुख्य कारण के रूप में उभरकर सामने आता है। कई परिवार आज भी सोचते हैं कि बेटी के बड़े होने पर शादी में भारी-भरकम खर्च करना पड़ेगा। आर्थिक रूप से कमजोर परिवार दहेज प्रथा के डर से बेटी के जन्म को बोझ मानते हैं। दूसरी ओर ऐसी मानसिकता वाले बेटे को कमाने वाला और परिवार को आर्थिक सहारा देने वाला मानते हैं। इस तरह की सोच से समाज में बेटियों के जन्म की संख्या में गिरावटट आ जाती है।

(iii) **शिक्षा का निम्न स्तर और अंधविश्वास (Low Level of Education and Superstition)-** जिस समाज में शिक्षा का स्तर निम्न होता है, उस समाज के लोग अंधविश्वासों के शिकार भी अधिक होते हैं। निम्न

शिक्षा स्तर के कारण अंधविश्वास, मिथक और रूढ़ मान्यताएँ इसमे अधिक प्रभावी रहती हैं। इस कारण से ऐसे लोग बेटे के जन्म को कुल का दीपक और बेटी के जन्म को पिछले जन्म में किये गये पाप का परिणाम मानते हैं। ऐसी मान्यताएँ समाज में सामान्य नागरिकों को प्रभावित करती हैं। जिससे समाज का लिंगानुपात असंतुलित हो जाता है।

(iv) **चिकित्सा तकनीकों का दुरुप्रयोग (Misuse of Medical Techniques)-** आज चिकित्सा विज्ञान ने गर्भस्थ शिशु के विकास और बीमारी का पला लगाने के लिए चिकित्सकीय तकनीकें विकसित की हैं। इन तकनीकों में अल्ट्रासाउंड का दुरुप्रयोग किया जा रहा है। अल्ट्रासाउंड सेंटर गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग निर्धारण की जानकारी के लिए, इसका चोरी-छिपे दुरुप्रयोग कर रहे हैं। कुछ अल्ट्रासाउंड सेंटरों और निजी अस्पतालों द्वारा लालच में यह कार्य किया जा रहा है। हॉलाकि गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग की जांच करना गैर कानूनी अपराध हैं। इन सबके बावजूद भी कई परिवार वाले चोरी-छिपे गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग की जांच करा लेते हैं। यदि उन्हें पता चल जाता है कि गर्भ में लड़की है, तब वह गर्भ को गिरा देते हैं। इसके कारण लिंगानुपात असंतुलित हो रहा है।

(v) **सामाजिक असुरक्षा और हिंसा (Social Insecurity and Violence)-** जब बेटियों की सुरक्षा के नाम पर समाज स्वयं डराने लगे, तक कहीं-कहीं परिवार के लोग यह सोचने लगते हैं कि बेटी को जन्म ही क्यों दिया जाये। इसके पीछे मुख्य कारण महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा, दहेज हत्या, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा और छेड़छाड़ की घटनाएँ भी लोगों को सोचने को मजबूर करती हैं।

13.9 असंतुलित लिंगानुपात के परिणाम (Concequences of Imbalanced Sex Ratio)-

जब किसी समाज में लिंगानुपात का संतुलन बिगड़ जाता है, तब उस समाज में लिंगानुपात असंतुलन से अनेक समस्याओं का संकट गहरा हो जाता है। जिससे समाज में गंभीर परिणाम सामने आते हैं। असंतुलित लिंगानुपात के गंभीर परिणामों पर यहां चर्चा की जा रही है।

(i) **विवाह संबंधी संकट (Marital Crisis)**- लिंगानुपात के असंतुलन से समाज के कई हिस्सों में लड़कों के विवाह के लिए लड़कियां नहीं मिल पाती हैं। इससे लड़कों के विवाह की उम्र बहुत अधिक बढ़ जाती है। इससे उन क्षेत्रों में बाहरी राज्यों से दुल्हन मांगने की प्रथा भी बढ़ती है।

(ii) **सामाजिक तनाव और अपराधों में वृद्धि (Increase in Social Tension and Crimes)-** जब किसी समाज में अविवाहित पुरुषों की संख्या बढ़ जाती है, तब इससे वहां पर बेरोजगारी, नशाखोरी, मार-पीट, हिंसा की घटनाएँ जन्म लेने लगती हैं। महिलाओं के साथ हिंसा और यौन दुराचार की घटनाएँ बढ़ने लगती हैं। इस

प्रकार असंतुलित लिंगानुपात केवल पुरूष और महिलाओं का अनुपात नहीं है बल्कि यह उस समाज की सामाजिक शांति और सुरक्षा का भी सवाल है।

(iii) **मानव तस्करी और दुल्हन व्यापार को बढ़ावा (Promotion of human trafficking and bridetrade)**- जहा लड़कियों की कमी होती है वहां पर कुछ समाज विरोधी तत्व भी पनपने लगते हैं। कुछ लोग अन्य राज्यों के गरीब परिवारों से लड़कियों की खरीद-फरोख्त का काम करने लगते हैं, और इन खरीदी गई लड़कियों को अन्य राज्यों में बेच देते हैं। इससे मानव तस्करी को बढ़ावा मिलता है, और लड़कियों को खरीद-फरोख्त के वस्तु के रूप में देखा जाने लगता है।

(iv) **वृद्धावस्था में देखभाल की समस्या (The Problem of Care in old Age)**-शिक्षार्थियों जैसा कि आप जानते हैं कि अक्सर परिवारों में बुजुर्गों की देखभाल महिलाऐं करती हैं। यदि परिवारों में महिलाएँ ही नहीं होंगी, तब परिवार के बुर्जुगों की देख भाल कैसे हो पायेगी। यदि लिंगानुपात का संतुलन बिगड जाये तब परिवार में बुर्जुगों और बीमारों की देखभाल की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(v) **महिलाओं के प्रति हिंसा में वृद्धि (Increase in Violence against Women)-** जब किसी स्थान विशेष में लड़कियों की संख्या कम हो जाती है, तब वहा पर लड़कियों की मांग बढ़ जाती है। लड़कियों की मांग पूरी नहीं होने के कारण, कई बार महिलाऐं एक साथ कई भूमिकाओं का निर्वहन करने को मजबूर हो जाती हैं। जैसे- घरेलू काम, नौकरी, खेती और परिवार के सदस्यों की सेवा आदि, अनेक कार्य महिलाओं के द्वारा किये जाने लगते हैं। इसके साथ ही जहां लड़कियों की संख्या कम होती है वहां पर यौन शोषण, उत्पीड़न और बलात्कार जैसी घटनाएँ बढ़ने लगती हैं।

13.10 संतुलित लिंगानुपात के लिए उपाय (Measures for balanced Sex ratio)-

लिंगानुपात असंतुलन की समस्या के रोकथाम की दिशा में हमारी सरकारों ने अनेक कार्य किये हैं। हमारे संविधान ने भी अनुच्छेद 14 में सभी नागरिकों को समानता का अधिकार दिया है। अनुच्छेद 15 के तहत धर्म, लिंग और जाति के आधार पर समाज के नागरिकों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव की मनाही है। अनुच्छेद 39 (क) पुरूष और महिलाओं को आजीविका प्राप्त करने के समान अवसरों को प्रदान करता है। हमारे संविधान के द्वारा दिये गये तमाम अधिकार लिंगानुपात के संतुलन को बनाये रखने में सहायक हैं। इस इकाई में हम हमारी सरकारों के द्वारा लिंगानुपात के संतुलन की दिशा में किये जाने वाले कार्यों पर चर्चा करने का प्रयास कर रहे हैं।

(i) **कानून का कड़ाई से पालन किया जाये (The Law Should be Strictly Followed)-** गर्भ में लिंग की जांच करना कानूनी अपराध है। इस अपराध की रोकथाम के लिए PCPNDT (Pre-Conception

and Pre-Natal Diagnostic Techniques Act 1984) प्रभावी हैं। इस कृत्य को करने वाले डॉक्टरों, अस्पतालों और संबंधित परिवारों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही का प्रावधान भी किया गया है। यह अधिनियम तभी ज्यादा प्रभावी होगा, जब ऐसे लोगों की निगरानी सख्ती से की जाये। जो गर्भ मे लिंग निर्धारण सग जाच करते हैं।

(ii) **दहेज प्रथा और लैंगिक भेदभाव के विरूद्ध सामाजिक अभियान (Social Compaigns Against Dowry and Gender Discrimination)-** दहेज प्रथा समाज में लड़कियों को आर्थिक बोझ की तरह देखने का कारण बनती है। लैंगिक संतुलन के लिए यह अतिआवश्यक हो जाता है कि दहेज प्रथा और लैंगिक भेदभाव के विरूद्ध सामाजिक अभियान चलाया जाये। समाज के सम्पूर्ण व्यक्ति जब दहेज निषेध और लैंगिक भेदभाव जैसी बुराइयों को समझेंगे, तो इससे समाज में लड़का-लड़की का भेद समाप्त होने लगेगा। इससे लिंगानुपात संतुलित होगा।

(iii**) महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण पर अधिक जोर देना (To give more emphasis on economic empowerment of women)-** समाज में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, स्वरोजगार, उद्यमिता और कौशल विकास पर ज्यादा जोर दिया जाये। इन कार्यों से महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। जो लिंगानुपात के संतुलन को बनाये रखेन में सकारात्मक भूमिका निभायेगा।

(iv) **बेटियों के जन्म, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए चलाई जा रही योजनाओं को बढ़ावा (Promotion of Schemes being run for the Birth education and health of daughters)-** शिक्षार्थियों हमारी सरकार के द्वारा बेटियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को बढ़ाने के लिए तरह-तरह की छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई है। इन छात्रवृत्तियों का फायदा लड़कियों को व्यापक रूप से मिल भी रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि इन योजनाओं का और अधिक व्यापक प्रचार प्रसार किया जाये। इसमें कोई दो राय नहीं है कि ये योजनाएँ लिंगानुपात के संतुलन में सकारात्मक योगदान दे रही हैं[10]।

(v) **महिलाओं की सुरक्षा और हेल्पलाइन सिस्टम में सुधार (Strengthening women Safty and Protection Systems)-** समाज में महिलाओं के प्रति हिंसा, उत्पीड़न और असुरक्षा लिंगानुपात के गिरने की एक बड़ी वजह है। सुरक्षित परिवेश, तेज पुलिस कारवाई, महिला हेल्पलाइन और फास्ट-ट्रैक कोट बेटियों के जन्म और पालन-पोषण के प्रति परिवारों का विश्वास बढ़ाने का कार्य करते हैं[11]। इन सब व्यवस्थाओं को शक्तिशाली और दुरस्थ बनाने से लिंगानुपात संतुलन के और प्रभावी परिणाम निकलकर आयेगे।

(vi) **जेंडर संवेदनशील शिक्षा और जागरूकता (Gender Sensitive and Awareness)-** समाज में लिंगानुपात संतुलन के लिए जेंडर संवेदनशील शिक्षा और जन-जागरूकता को समाज में प्रमुखता दी जाये। लड़का-

लड़की के प्रति समान दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता है। स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और समुदायों के बीच जेंडर सेसिंटाइजेशन कार्यक्रम, निबंध, पोस्टर प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता और जागरूकता अभियान चलाकर समाज के अन्य लोगों की सोच में बदलाव लाया जा सकता है[12]। ये सब उपाय समाज में स्वस्थ्य लिंगानुपात को बढ़ाने का कार्य करेंगे। इसके लिए सर्वप्रथम समाज में लोगों को अपनी मानसिकता बदलने की जरूरत है। लड़कियों के प्रति भेदभाव और पूर्वाग्रह की मानसिकता जब सम्पूर्ण समाज से समाप्त हो जायेगी, तब निश्चित तौर पर समाज में लिंगानुपात संतुलित हो जायेगा, इन सब कार्यक्रमों और योजनाओं के अतिरिक्त-

- स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में "जेंडर इक्वैलिटी क्लबों" की स्थापना की जाये।
- जिन घरों में बेटियों का जन्म हो रहा है, उन्हें सार्वजनिक मंचों पर सम्मानित किया जाये। ये सम्मान समाज के अन्य लोगों को भी प्रेरणा देने का कार्य करेगा।
- विवाह में लड़के पक्ष के द्वारा दहेज नहीं लेने का घोषणा पत्र लिया जाय।
- बेटियों के हितों में काम करने वाले गैर संगठनों, पंचायतों और स्थानीय निकायों को सम्मानित किया जाय।
- प्रत्येक जिले में "गर्ल चाइल्ड प्रोग्रेस इंडेक्स" लागू किया जाय। इसमें बेटियों के जन्म, स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित उपलब्धियों को प्रदर्शित किया जाय।

13.11 सारांश (Summary)-

लिंगानुपात समाज में प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओ की संख्या को दर्शाता है। लिंगानुपात सिर्फ संख्या को नहीं दर्शाता है बल्कि यह समाज की सामाजिक-आर्थिक, समाजिक-सांस्कृतिक, सामाजिक-शैक्षणिक और सामाजिक-राजनैतिक स्थिति के स्तर को भी स्पष्ट करता है। इससे महिलाओं की स्वास्थ्य, सुरक्षा और लैंगिक समानता की स्थिति भी स्पष्ट होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो लिंगानुपात के असंतुलन का कारण समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता, पुत्र वरीयता, दहेज प्रथा, महिलाओं की असुरक्षा और लैंगिक भेदभाव जैसी विकृतियां इसके लिए उत्तरदायी दिखती हैं। सरकार के द्वारा इस समस्या से निपटने के लिए अनेक कानूनी, संवैधानिक और बेटियों की शिक्षा-दीक्षा को बढ़ाने के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएँ भी संचालित की हैं। स्वस्थ्य लिंगानुपात समाज का दर्पण है। इस इकाई में लिंगानुपात की अवधारणा, विशेषताऐं, लिंगानुपात के प्रकार, राज्यों में लिंगानुपात की जनगणना 2011 के अनुसार स्थिति, लिंगानुपात असंतुलन के कारण, समाज में असंतुलित लिंगानुपात के परिणाम और समाज में संतुलित लिंगानुपात को बनाने के लिए संवैधानिक कानूनी, नीतिगत और जनकल्याणी योजनाओं के विषय में चर्चा की गई है।

13.12 परिभाषिक शब्दावली (Glossary of terms)-

(i) लिंगानुपात (Six Ratio) प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या को लिंगानुपात कहते हैं।

(ii) पितृसत्ता (Patriarchy)- पितृसत्तात्मक वह व्यवस्था है, जिसमें निर्णय लेने की शक्ति पुरूषों के हाथ में होती है।

(iii) लिंग पहचान तकनीक (Sex Determination Techniqees)- गर्भ में पल रहे भ्रूण के लिंग का पता लगाने के लिए चिकित्सकीय तकनीक।

(iv) दुल्हन व्यापार (Bride Buying)- कम लिंगानुपात वाले क्षेत्रों के द्वारा अन्य राज्यों से लड़कियों की खरीद-फरोख्त करने की सामाजिक प्रथा।

13.13 संदर्भ ग्रंथ सूची- (Reference List)

1. इग्नू (2020) "जेंडर संवेदीकरण-संस्कृति समाज और परिवर्तन (BGDG-17) पृ० 11

2. Desai, N. (2010)6" women in Indian society" Himalyan Publications, New Delhi.

3. Indian census Reports (Various years) office of the Register General & census commissioner, Government of India.

4. Ministry of women and child Development (2022) " status of women in India Report, Government of India.

5. National family Health Survey (NFHS-5 (2021) "Ministry of Health and Family Welfare, Government of India.

6. UNICEF (2019) 66 child and Gender Statistics United Nations International Children's Emergency fund.

7. Census of India Report 2011

8. Census of India Report 2011

9. National Policy for women Empowerment (2016), Government of India.

10. Beti Bachao Beti Padhao Progra mme (2021), Annual Review Report, Government of India.

11. National crime Records Bureau (2022) women safety and crime statistics An Inding

12. Ministry of women and child Development (2022) "Status of women in India Report, Govt. of India

13.14 निबंधात्मक प्रश्न-

1. लिंगानुपात से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व पर चर्चा कीजिए।
2. लिंगानुपात असंतुलन के प्रमुख कारणों पर चर्चा कीजिए।
3. असंतुलित लिंगानुपात से समाज में पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा कीजिए।
4. लिंगानुपात सुधार हेतु सरकार द्वारा किये गये कार्यों पर चर्चा कीजिए।
5. लिंगानुपात का अर्थ एवं विशेषताऐं लिखिए।
6. लिंगानुपात के प्रमुख प्रकारों की चर्चा कीजिए।
7. संतुलित लिंगानुपात के लिए आप क्या सुझाव देंगे चर्चा कीजिए।

इकाई- 14 **मीडिया**

Media

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 मीडिया क्या है?

14.3 समाज में मीडिया की भूमिका

14.4 मीडिया और लैंगिक संवेदनशीलता का संबंध

14.5 मीडिया में लैंगिक छवियों का निमार्ण

14.6 लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका

14.7 लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका

14.8 सारांश

14.9 पारिभाषिक शब्दावली

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना (Introductaion)-

समाज में निरंतर परिवर्तन आते रहते हैं। परिवर्तनशीलता समाज का गुण है। समाज में परिवर्तन की दिशा लोगों के ज्ञान, कौशल, नवाचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर निर्भर करती है। लोगों के ज्ञान और कौशल को समाज के अन्य लोगों तक पहुंचाने के लिए संप्रेक्षण आवश्यक होता है। संप्रेक्षण सूचनाओं के आदान-प्रदान की एक प्रक्रिया है। यदि लोग अपने ज्ञान, कौशल और हुनर को अपने तक ही सीमित रखेंगे, तब ऐसी स्थिति में इन लोगों का ज्ञान संकुचित हो जायेगा। ऐसी स्थिति में लोगों का ज्ञान समाज के अन्य लोगों तक नहीं पहुंच पायेगा। ऐसी स्थिति में मीडिया समाज के सामने उभरकर आता है। मीडिया ही सम्पूर्ण समाज को संदेशों, सूचनाओं और नये-

नये विचारों से अवगत कराने का कार्य करता है। मीडिया के द्वारा ही समाज को यह पता लगता है कि दुनिया में क्या हो रहा है? लोग समाज के किसी ज्वलंत विषय पर अपनी क्या राय रखते हैं? लोगों की दृष्टि में क्या सही है ओर क्या गलत? मीडिया आज समाज का एक ऐसा माध्यम है जो लोगों को तरह-तरह की सूचनाऐं देता है। इसके साथ ही मीडिया लोगों की सोच, व्यवहार, दृष्टिकोण और समाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को भी आकार देने का कार्य करता है। जब-जब भी समाज में सामाजिक-आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, सामाजिक-राजनैतिक, सामाजिक शैक्षणिक और सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन आते हैं, तब लोगों में सामूहिक जागरूकता लाने का कार्य मीडिया ही करता है। मीडिया के माध्यम से ही समाज के लोगों की किसी विषय पर दृष्टिकोण और वैचारिकी बदलती है। समाजिक मुद्दों पर लोग संवाद करते हैं। जिससे समाज की सामाजिक समस्याओं का निकारकरण होता है। इसलिए आज के युग में मीडिया समाज का एक अभिन्न अंग बन गया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि आज मीडिया केवल संचार का साधन नहीं है। बल्कि मीडिया समाजिक निर्माण, सामाजिक सुधार और समाजिक परिवर्तन का भी एक सशक्त माध्यम है। जो समाज को आईना दिखाने का कार्य करता है। इस इकाई की शुरूवात करने से पहले जरा मीडिया पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

14.1 उद्देश्य (Objective)-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- मीडिया और समाज में इसकी भूमिका के विषय में समझ बना पाने में सक्षम होगें।
- मीडिया और लैंगिक संवेदनशीलता के संबंध में अपनी समझ को विकसित कर पायेंगे।
- मीडिया में लैंगिक छवियों के निर्माण के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ाने में मीडिया की भूमिका के विषय में जान पायेगें।
- लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की नकारात्मक भूमिका के विषय में जान पायेगे।

14.2 मीडिया क्या है? (What is Media)-

मीडिया से आशय विचारों, सूचनाओं और संदेशों को समाज के लोगों के बीच पहुंचाने वाले साधन से है। ये सूचनाएँ, संदेश, विचार, भाषा, कहानी, दृश्य और ध्वनि के माध्यम से लोगों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। मीडिया के स्वरूपों में प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, डिजिटल मीडिया, मनोरंजन मीडिया और विज्ञापन शामिल हैं। शिक्षार्थियों जैसा कि आप जानते है कि यह इकाई लैंगिक संवेदनशील से संबंधित है। इसलिए इस इकाई

में लैंगिकक संवदेनशीलता के दृष्टिकोण से आपको, मीडिया को समझाना है। इसलिए इस इकाई में सर्वप्रथम मीडिया की समाज मे भूमिका को समझना आवश्यक हो जाता है।

14.3 समाज मे मीडिया की भूमिका (Role of Media is Society)-

शिक्षार्थियों आज मीडिया सिर्फ एक सूचना का माध्यम नहीं है। मीडिया समाज के लोगों के विचारों का निमार्णकर्ता भी है। समाज मीडिया को देखता नहीं है बल्कि मीडिया की बात को मानता भी है। मीडिया समाचार, फिल्में, धारावाहिक, वेब सीरीज और सोशल मीडिया लोगों की सोच को आकार देने का कार्य करते हैं। मीडिया सीखने, तुलना करने, समाज में आदर्श प्रस्तुत करने और लोगों के सामाजिक-विमर्श को दिशा देने का कार्य करता है। हरबर्ट मीड के अनुसार "मनुष्य वहीं बनता है जैसा समाज उसे दिखाता है।" आधुनिक समाज सबसे ज्यादा मीडिया से प्रभावित है। इसलिए समाज के निर्माण में मीडिया महत्वपूर्ण हो जाती है।

14.4 मीडिया और लैंगिक संवेदनशीलता का संबंध (Relation of Media with Gender Sansitization)-

लैंगिक संवेदनशीलता का अर्थ है- सभी लिंगों जिसमें महिलाएँ, पुरूषों, ट्रांसजेंडरों और समाज के अन्य लैंगिक समूहों के प्रति सम्मान और समानता का व्यवहार विकसित करना। सभी को समान समझना, शिक्षार्थियों जैसा कि आप जानते हैं कि मीडिया सामाजिक विचारों और लोगों के व्यवहार को दिशा देता है। इसी क्रम में मीडिया लिंग (Sex) के प्रति समाज की सोच को विकसित करने का भी एक साधन बन जाता है। समाज में महिला, पुरूष और अन्य लिंग समूहों के प्रति सम्मान और समानता के भाव का निमार्ण मीडिया के द्वारा ही किया जाता है। जब मीडिया महिलाओं, पुरूषों और ट्रासजेंडरों की गरिमा और क्षमता को प्रस्तुत करता है, तब समाज के अन्य लोगों पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। समाज के लोग इस बात को भलि-भांति जान पाते हैं कि समाज में मानव मूल्य लिंग के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर तय होते हैं। इसके विपरीत जब मीडिया रूढ़िवादी छवियों की प्रस्तुति करता है, जैसे महिलाओं की भूमिकाओं को केवल घर तक सीमित करना, महिलाओं को कमजोर दिखाना और पुरुषों को मजबूती के साथ प्रस्तुत करना, तब इससे समाज में महिला-पुरूषों के बीच असमानता बढ़ने लगती है। जुडिथ बटलर के अनुसार - "लिंग एक जन्मजात सत्य नहीं, बल्कि वह सामाजिक व्यवहार है, जिसे निरंतर प्रदर्शन के द्वारा स्थापित किया जाता है[1] ।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मीडिया की प्रस्तुति केवल एक मनोरंजन का हिस्सा नहीं है। मीडिया समाज मे लिंग पहचान और लैंगिक अपेक्षाएँ तय करने वाला भी एक उपकरण है। इसलिए मीडिया यदि संवेदनशील, समतापूर्ण और संतुलित दृष्टिकोण से लिंग पहचान प्रस्तुत करें, तब मीडिया का कार्य लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने वाला होगा। इसके साथ ही यदि मीडिया

महिलाओं के प्रति असंवेदनशील होगा, तब समाज में लैंगिक भेदभाव बढ़ेगे। इसलिए लैंगिक संवेदनशील समाज के निमार्ण में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका उभरकर सामने आती है।

14.5 मीडिया में लैंगिक छवियों का निर्माण (Construction of Gender Images in Media)-

मीडिया समाज के सामने महिला, पुरुष और अन्य लैंगिक समूहों की छवियों को प्रदर्शित करता है। मीडिया इन लैंगिक समूहों को परिभाषित और समाज में स्थापित करने का भी कार्य करता है। जैसे-फिल्मे, धारावाहिकों, विज्ञापनों और वेब कंटेट में अक्सर महिलाओं को सौंदर्य, देखभाल, कपड़े साफ करने, बर्तन साफ करने और घरेलू भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए देखा जाता है। इसके साथ ही पुरूषों को शक्ति, क्षमता निर्माण और निर्णय लेने के रूप में दिखाया जाता है। इन लैंगिक छवियों से समाज के सम्मुख एक भ्रम पैदा होता है, कि लिंग के आधार पर समाज की भूमिकाएँ प्राकृतिक और स्थायी होती हैं। जबकि वास्तव में यह सांस्कृतिक निर्माण है। जब समाज के लोग इन लैंगिक भूमिकाओं को मीडिया में बार-बार देखते हैं, तब समाज के लोग इन्हें सामान्य और सही मानने लगते हैं। यहीं से समाज में लैंगिक रूढ़िवाद बढ़ने लगता है। स्टुअर्ट हॉल के अनुसार "मीडिया केवल वास्तविकता नहीं दिखाता है, बल्कि मीडिया वास्तविकता के अर्थ का निर्माण करता है[2] ।" इसलिए समाज में मीडिया जब एक निश्चित तरीके से महिला, पुरुषों और अन्य लैंगिक समूहों की छवियों को प्रस्तुत करता है, तब उसी आधार पर समाज सोचता और व्यवहार करता है।

इस प्रकार इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि मीडिया केवल लैंगिक छवियों को दिखाने का ही कार्य नहीं करता है। बल्कि मीडिया लैंगिक छवियों के कार्यों का निर्धारण भी कर देता है। जिससे समाज में महिलाओं, पुरुषों के प्रति रूढ़धारणा विकसित होने लगती है। उदाहरण के तौर पर कुछ रूढ़धारणाएँ (स्टीरियोटाइप) में महिलाओं को घर, रसोई, बच्चे, परिवार के सदस्यों की देखभाल, करते दिखाया जाता है। इसके साथ ही पुरूषों को कमाई करने वाला, शक्तिशाली, निर्णय लेने वाला और साहसी दिखाया जाता है। धीरे-धीरे इन रूढ़ धारणाओं को समाज के द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार मीडिया जब महिलाओं और पुरुषों के कार्यों और भूमिकाओं को दिखाता है, तब समाज के लोग इन कार्यों और भूमिकाओं को सत्य मान लेते हैं।

14.6 लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका (Role of Media in Promoting Gender Sensitization)-

मीडिया समाज में परिवर्तन लाने का एक सशक्त माध्यम है। मीडिया समाज में रहने वाले लोगों के विचारों, अपेक्षाओं और उनके व्यवहार को प्रभावित करता है। मीडिया पर महिलाओं, पुरूषों और अन्य लैंगिक समूहों के संदेशों को समानता, सम्मान और गरिमा के साथ प्रस्तुत करता है, तब समाज के सामने एक सकारात्मक संदेश

जाता है। जेरमी टर्नर के अनुसार "मीडिया सामाजिक दृष्टिकोण बदलने का सबसे तेज और सबसे प्रभवशाली साधन है[3] ।" इसलिए मीडिया जब समानता, सहयोग, सम्मान और लैंगिक समानता की छवियों पर बल देता है, तब इससे समाज में लैंगिक संवेदनशीलता और लैंगिक सम्मान बढ़ता है। लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका पर इस इकाई में चर्चा की जा रही है।

(i) **महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों की उपलब्धियों को प्रमुखता (Highlighting Achivements of women and other Gender Groups)-** मीडिया समाज के लिए आईने का कार्य करता है। मीडिया जब समाज में महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों के द्वारा किये गये कार्यों और उपलब्धियों को प्रमुखता देता है, तब इससे समाज की समझ विकसित होती है। यह उपलब्धियॅा किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। जैसे विज्ञान, कला, खेल, मनोरंजन, राजनीति, प्रशासन और उद्धमिता आदि क्षेत्रों में मीडिया द्वारा इस तरह की सकारात्मक छवियां और प्रेरक कहानियां समाज की रूढ़िवादी लिंग आधारित धारणाओं को कमजोर करने का कार्य करती हैं। मीडिया की ऐसी प्रस्तुतियों से समाज और नई पीढ़ी के लिए समाज में नये आदर्श स्थापित करने का कार्य करते हैं[4] ।

(ii) **प्रगतिशील और संवेदनशील पात्रों का चित्रण (Portrayal of Progressive and Sensitive Characters)-** मीडिया द्वारा फिल्मों, विज्ञापनों और वेब सीरीज में पात्रों का चित्रण किया जाता है। मीडिया के पात्र जब लैंगिक समानता, लैंगिक सम्मान और लैंगिक सहयोग से संबंधित चित्रण प्रस्तुत करते हैं, तब इसका सीधा सकारात्मक प्रभाव समाज पर पड़ता है। सशक्त महिलाएँ, आत्मनिर्भर महिलाएँ, जिम्मेदार पिता, सम्मानजनक अन्य लैंगिक समहों की प्रस्तुतियॅा आम जनमानस को प्रभावित करती हैं। इसलिए स्टुअर्ट हॉल ने कहा है कि "मीडिया केवल वास्तविकता नहीं दिखाता है। मीडिया वास्तविकता के अर्थ का निर्माण भी करता है"[5]। इसलिए मीडिया द्वारा जब पात्रों का चित्रण सामान्य रूप से दिखाया जाता है, तब समाज इन पात्रों की छवियों को स्वीकार करने लगता है।

(iii) जन-जागरूकता अभियानों को समर्थन (Strengthing Public Awareness Campaigns)- मीडिया बड़े-बड़े जन जागरूकता अभियानों को चलाने का कार्य करता है। इन जनजागरूकता अभियानों में "बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं", "लिंग समानता", "महिलाओं के लिए त्वरित न्याय" और "महिला अधिकार" आदि अनेक कार्यक्रमों की जन जागरूकता मीडिया द्वारा बढ़-चढ़ कर की जाती है। जब इन लैंगिक समानता के अभियानों को टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया और समाचार पत्रों में प्राथमिकता मिलती है, तब ये समाज में सामाजिक विमर्श का हिस्सा बन जाते हैं। इन अभियानों के परिणामस्वरूप लोगों में सामाजिक समानता, लैंगिक समानता और लैंगिक सम्मान की भावना विकसित होने लगती है [6] । जिससे समाज में लैंगिक संवेदनशीलता बढ़ती है।

(iv) सामाजिक कुरीतियों और लिंग आधारित हिंसा के विरूद्ध आवाज (Raising Awareness Against Gender-Based Voilince and Social Evils)- शिक्षार्थियों जैसा कि आप जानते हैं कि समाज में अनेक सामाजिक समस्याएँ व्याप्त होती हैं। ये सामाजिक समस्याएँ समाज को पीछे ले जाने का कार्य करती हैं। मीडिया जब समाज में व्याप्त इन समस्याओं, यौन उत्पीड़न और लैंगिक असमानता से संबंधित समस्याओं को उजागर करता है, तब समाज का ध्यान इन सामाजिक समस्याओं के निराकरण की ओर जाता है। लोगों की सामूहिक चेतना इन समस्याओं के निराकरण की ओर विकसित होती है। मीडिया इन तमाम मुद्दों को सार्वजनिक मंचों पर लाने का कार्य करता है। जिससे इन सामाजिक समस्याओं के निराकरण को दिशा मिलती है[7]।

(v) रूढ़िवादी लैंगिक भूमिकाओं को चुनौती देना (Challenging Traditional Gender Roles)- मीडिया पारम्परिक लिंग भूमिकाओं से संबंधित धारणाओ जैसे महिलाऐं घर का कार्य, बच्चों की देखभाल, साफ-सफाई और भोजन संबंधी व्यवस्था तथा पुरूष कमाई करने वाला, शक्तिशाली, निर्णय लेने वाला और सहासी आदि रूढ़ धारणाओं को चुनौतियॉ देता है। मीडिया द्वारा जब ऐसे विज्ञापनों और कार्यक्रमों को दिखाया जाता है, जिसमें पुरूष खाना बनाने, बच्चों की देखभाल करने और महिलाऐं नेतृत्व, तकनीकी नवाचार और साहसिक निर्णयों की भूमिका को प्रस्तुत करते हैं। तब ये भूमिकाएँ सामाजिक रूढ़ियों और लैंगिक असमानता को दूर करने में सहायक होते हैं[8]। यह समाज को यह सिखाने में मदद करते हैं कि जिमेदारियां, क्षमता और कार्यों का विभाजन जैविक नहीं हैं। ये जिम्मेदारियां सामाजिक हैं, जिन्हें संवेदनशीलता के साथ बदला जा सकता है। लैंगिक संवेदनशीलता और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए मीडिया-

- समाज को यह सिखाने में मदद करता है कि मनुष्यों की क्षमता लिंग (Sex) से नहीं मेहनत से तय होती है।
- मीडिया समाज के सभी लिंगों को समान दिखाकर समाज की सोच बदलने का कार्य करता है।
- मीडिया घर और बाहर के कार्यों को सभी के लिए बराबर बताता है।
- मीडिया अलग लैंगिक समूहों की पहचान कर, समाज को इन्हें स्वीकार करने की समझ बढ़ाता है।
- मीडिया बच्चों और युवाओं को लैंगिक समानता की दिशा दिखाता है।
- मीडिया अलग-अलग लैंगिक समूहों की प्रेरक कहानियों को दिखाकर समाज की सोच बदलने का कार्य करता है।
- लैंगिक समानता से संबंधित अभियानों से मीडिया लोगों की सोच को सकारात्मक बनाता है।

- मीडिया शिक्षा, जागरूकता और परामर्श कार्यक्रमों के द्वारा लिंग आधारित भेदभावों को दूर करने में सहायक होता है।
- मीडिया महिलाओं और पुरुषों की आवाज को महत्व देकर यह सिखाता है कि हर मनुष्य की राय जरूरी है।
- मीडिया लैंगिक समूहों के प्रति अपमानजनक टिप्पणियोयं को मनोंरंजन न मानकर गलत ठहराता है, इससे लैंगिक समूहों के प्रति सम्मान बढ़ता है।

14.7 लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका (The Role of Media in Promoting Gender Insentization)-

शिक्षार्थियों इससे पूर्व आपने लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। आपने देखा कि किस प्रकार मीडिया समाज में लैंगिक असमानता को समाप्त कर, लैंगिक समानता की भावना को विकसित करने का कार्य करता है। मीडिया के इन सकारात्मक कार्यों से समाज की सामाजिक एकता मजबूत होती है। जिससे एक समतामूलक समाज की स्थापना होती है। कुल मिलाकर देखा जाये तो मीडिया समाज को आईना दिखाने का कार्य करता है। इसके साथ ही यदि मीडिया समाज में महिला, पुरुषों और अन्य लैंगिक समूहों की छवियों को नकारात्मक तरीके से प्रस्तुत करेगा तब इसका प्रभाव भी समाज पर नकारात्मक ही पड़ेगा। इस इकाई में हम यह जानेगें कि किस प्रकार मीडिया किसी समाज में लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने का कार्य करता है। ये कार्य मीडिया के लैंगिक संवेदनशीलता पर नकारात्मक कार्यों की श्रेणी में आयेगें। मीडिया के द्वारा लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने की दिशा में जो भूमिका निभाई जाती है, उसे यहां निम्नलिखित बिंदुओं में प्रस्तुत किया जा रहा है-

(i) महिलाओं को वस्तु की तरह दिखाना (Women Shown as objects)- अक्सर देखा जाता है कि मीडिया महिलाओं को ऐसे प्रस्तुत करता है कि मानो महिलाएँ एक वस्तु हों। यानि महिलाओं को केवल आकर्षण का साधन बना दिया जाता है। इससे समाज में महिलाओं की छवि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। समाज के लोग मीडिया के द्वारा महिलाओं की दिखाई गई छवि से महिलाओं की पहचान, क्षमता और व्यक्तित्व का आंकलन करने लगते हैं[9]। महिलाओं की छवि को केवल उनके सौन्दर्य तक सीमित करने से लैंगिक असंवेदनशीलता बढ़ने लगती है।

(ii) महिलाओं पर हिंसा को सामान्य दिखाना (Normalizing Violence Against women)- टीवी, फिल्मों, धारावाहिकों और वेब सीरीजों में महिलाओं पर हिंसा कई बार मनोरंजन की तरह दिखाया जाता है।

मीडिया के द्वारा दिखाये गये इस तरह के कार्यक्रमों से समाज में यह संदेश जाता है कि यह एक सामान्य बात है। इससे महिलाओं पर होने वाली हिंसा से सामाज की संवेदनशीलता कम होने लगती है[10]।

(iii) **आक्रामक पुरुषत्व को बढ़ावा (Promotion of Aggressive Masculinity)-**मीडिया द्वारा ऐसे पुरुष पात्रों को प्रमुखता दी जाती है जो प्रभुत्व आक्रामकता और महिलाओं पर नियंत्रण को अपनी पहचान मानते हैं। इससे समाज में लैंगिक असंवेदनशीलता की जड़े गहरी होने लगती हैं। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव युवाओं पर पड़ता है। युवाओं में इससे गलत पुरूषत्व की समझ विकसित होती है[11]। मीडिया जब पुरूषों की छवि को आक्रमक तरीके से प्रस्तुत करता है, तब इससे पुरूष प्रधान समाज को और बल मिलता है।

(iv) **मनोरंजन कार्यक्रमों में पक्षपात (Gender Bias in Entertainment Shows)-**टी०वी० फिल्मों, धारावाहिकों में महिलाओं को अक्सर घरेलू कार्यों और सकायक भूमिकाओं में दिखाया जाता है। इसके साथ ही पुरूषों को समाज की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों के निर्वहन की भूमिका में दिखाया जाता है। इससे समाज में यह संदेश जाता है कि महिलाओं की भूमिकाएँ सिर्फ घरों तक ही सीमित होती हैं। समाज में जब इस तरह की धारणा बलवती होती हैं, तब इसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप लैंगिक असमानता में बढ़ोत्तरी होती है।

(v) अवास्तविक सुंदरता के मानक (Unrealistic Beauty Standards)- फिल्मों, विज्ञापनों और धारावाहिकों में अक्सर एक ही तरह की सुंदरता को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे-गोरा रंग, पतला शरीर और अच्छी कद-काठी आदि। इससे समाज की युवतियों और महिलाओं में मानसिक दबाव बनता है। जिससे इन युवतियों और महिलाओं में अपनी कद-काठी और शारीरिक संरचना के प्रति असंतोष, तनाव और आत्म सम्मान की समस्याएँ पैदा हो जाती है। समाज के लोग भी महिलाओं और युवतियों की सुंदरता के मानकों में गोरा रंग, पतला शरीर और अच्छी कद-काठी को आदर्श मानने लगते हैं। काल्पनिक सुंदरता के ये मानक समाज में विभेदीकरण को बढ़ावा देने का कार्य करते हैं।

(vi) लैंगिक रूढ़ियों को मजबूत करना (Strengthening Gender Stereotypes)-मीडिया पुरूषों को मजबूत और निर्णय लेने में सक्षम दिखाता है। साथ ही मीडिया महिलाओं की छवि को भावुक, निर्भर और घरेलू कार्यों में दक्ष दिखाता है। मीडिया द्वारा महिलाओं और पुरूषों की इस तरह की दिखायी जाने वाली छवियों से समाज का एक दृष्टिकोण बन जाता है। समाज के लोग इन छवियों से महिलाओं को कमजोर और पुरूषों को मजबूत मानने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप लैंगिक असंवेदनशीलता बढ़ने लगती है।

इस प्रकार यदि मीडिया महिलाओं, पुरूषों और अन्य लैंगिक सूहों की छवियों को गलत तरीके से प्रस्तुत करता है, तब इसका समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव समाज में लैंगिक असंवेदनशीलता को

बढ़ाता है। समाज लिंगों में विभाजित हो जाता है। इसके साथ ही समाज में लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया द्वारा-

- महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों की उपलब्धियों को कम महत्व देना।
- मीडिया द्वारा आयोजित इंटरव्यू या साक्षात्कार में पुरूष विशेषज्ञों को प्राथमिकता देना।
- मीडिया द्वारा समाचारों और विज्ञापनों में लैंगिक भाषा का अत्यधिक उपयोग करना।
- महिलाओं की भूमिकाओं को केवल परिवार, सौन्दर्य, फैशन और खाने-पीने की सामग्रियों तक सीमित करना।
- लैंगिक मुद्दों की गलत रिर्पोटिंग करना।
- सोशल मीडिया पर महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों की गलत छावि प्रस्तुत करना।
- मीडिया द्वारा प्रसारित विज्ञापनों में घरेलू कार्यो के लिए सिर्फ महिलाओं को जोड़ना। ऐसे अनेक विज्ञापनों से महिलाओं की भूमिका सिर्फ घर तक सीमित हो जाती है।
- महिलाओं की सफलता को सिर्फ व्यक्तिगत जीवन से जोड़ने पर महिलाओं की पेशवर पहचान कम हो जाती है।
- लैंगिक असमानता के विषय में पुरुषों की गलतियों को सिर्फ मजाक के रूप में प्रस्तुत करना।
- ग्रामीण महिलाओं की वास्तविकता समस्याओं को नजरअंदाज करना।
- फिल्मों और धारावाहिकों में मीडिया द्वारा 'आदर्श महिला' की छवि थोपना।
- पुरूषों को 'रक्षक' और महिलाओं को 'सुरक्षा की जरूरत' जैसे कथानकों से लैंगिक असंवेदनशीलता बढ़ती है।

14.8 सारांश (Summary)-

इस इकाई में मीडिया और लैंगिक संवेदनशीलता के बीच के संबंध को व्यवहारिक रूप से समझाया गया है। इस इकाई की शुरूवात में मीडिया और समाज में इसकी भूमिका के विषय में बताया गया है। लैंगिक संवेदनशीलता को मीडिया किस प्रकार प्रभावित करता है, इसमें बताया गया है। इस इकाई में स्पष्ट किया गया है कि मीडिया महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों की छवियों का कैसे निर्माण करता है। लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया कैसे अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करता है। इसके साथ ही इस इकाई के अंत में लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा देने में मीडिया की नकारात्मक भूमिका पर भी चर्चा की गई है। इस प्रकार इस

इकाई में बताया गया कि मीडिया के पास लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ाने की शक्ति है। यदि मीडिया गलत संदेशों, रूढ़ियों और एकतरफा चित्रण करेगा तो इससे लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ावा ही मिलेगा। इन सब बातों को इस इकाई में समाहित किया गया है।

14.9 पारिभाषिक शब्दावली (Glpssary of terms)

(1) लैंगिक पक्षपात (Gender Bias)- यह वह स्थिति है जब किसी एक लैंगिक वर्ग को दूसरे की तुलना में अधिक महत्व, अधिकार और सकारात्मक छवि दी जाती है।

(ii) लैंगिक रूढ़ियां (Gender Stereotypes)- ये वे पारम्परिक धारणाएँ हैं जिनमें पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं, गुणों और क्षमताओं को सीमित और निश्चित रूप से पेश किया जाता है।

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (Reference List)

1. Butler; J. (1990) "Gunder Trouble: Faminism and the subversion of Identity, Routledge Publications.

2. Hall, S (1997) "Representation: Cultural Representations of signfying Practices, Sage Publications.

3. Turner, J. (2016)" media, Culterre and Social change, Publications oxford University Press.

4. UN women (2021) 66 Media and Gunder Equality Framework Report.

5. Hall, S (1997) "Representation: Cultural Representations of signfying Practices, Sage Publications.

6. Government of India (2023) "Beti Bachao Beti Padhao - Media Outreach Report.

7. National commision for women (2021) Annual Report on women saftey and media coverage.

8. Verma, P (2022) Gender Stereotyping through cinema: A Study of Bollywood Media and Culture Journal, Vols, Issue 1, Paje-66-79.

9. Mulvey, L. (1975) "Visual Pleasure and Narrative Cinema Screen."

10. Tuchman, (1978) "Hearth and Home Images of women in India the Mars Media? oxford University Publications. Medi

11. Connel, R.W. (1995) "Masculinities" University of California Press Publications.

14.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Questions)-

1. मीडिया और लैंगिक संवेदनशीलता के बीच संबंध को स्पष्ट कीजिए।
2. मीडिया में लैंगिक छवियों के निर्माण पर चर्चा कीजिए।
3. लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ाने में मीडिया की सकारात्मक भूमिका पर चर्चा कीजिए।
4. लैंगिक असंवेदनशीलता को बढ़ाने में मीडिया की नकारात्मक भूमिका पर टिप्पणी कीजिए।
5. लैंगिक रूढ़ियों पर समाज का क्या प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट कीजिए।
6. रूढ़िवादी लैंगिक भूमिकाओं को चुनौती देना क्यों आवश्यक है?